प्रथम अंक/प्रथम खण्ड
www.kameng.in

जुलाई-दिसंबर, 2024
ISSN: 3048-9040 (Online)

PEER REVIEWED JOURNAL

कामेंग

अर्धवार्षिक ई-पत्रिका

संपादक
डॉ. अंजु लता

आवरण पृष्ठ - डुबरी दास

कामेंग ई-पत्रिका

कामेंग ई-पत्रिका

Copyright © 2025 by kameng.in **सहकर्मी समीक्षा जर्नल**

ALL RIGHTS RESERVED

इस पुस्तक के किसी भी भाग को पत्रिका की पूर्व लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम से पुनरुत्पादित, वितरित या प्रसारित नहीं किया जा सकता है|

No part of this Journal may be reproduced, distributed or transmitted in any form or by any means without the prior written permission of the Journal.

ISSN: 3048-9040 (Online)

प्रकाशक
कामेंग प्रकाशन समूह

सम्पादकीय कार्यालय
कामेंग ई- पत्रिका
कामेंग प्रकाशन समूह
नपाम, तेजपुर , असम
सम्पर्क- 7002306921/8135073278
www.kameng.in
Kameng.ejournal@gmail.com

आवरण पृष्ठ – डुबरी दास

कामेंग ई-पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखक के अपने विचार हैं। इससे सम्पादकीय पक्ष का सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। सभी कानूनी विवादों का न्यायिक क्षेत्र तेजपुर जिला न्यायालय, असम के अधीनस्थ हैं|

सम्पादकीय

जीवन में आस्था –नैतिकता और जिम्मेदारियों का बहुत महत्व होता है। इन सब के लिए व्यक्ति लगातार अपने आस पास के संसाधनों से सहायता लेता है। इन संसाधनों में से साहित्य भी एक माध्यम है जो समाज को एक दिशा प्रदान करने की क्षमता रखता है। एक ऐसे समय में जब पूरे विश्व में युद्ध, हत्याओं और हिंसा का नया इतिहास लिखा जा रहा हो तो व्यक्ति की जिम्मेदारिया बढ़ जाती हैं।

इतिहास साक्षी रहा है कि जब समाज नये परिवर्तनों के दौर से गुजरता है तो साहित्य भी अपनी पक्षधरता निर्मित करता है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर कामेंग पत्रिका के संपादन की योजना तैयार की गयी है। पिछले पंद्रह वर्षो से पूर्वोत्तर भारत में काम करने के दौरान यहाँ के समाज और साहित्य के साथ संबंध लगातार गहरा होता चला गया। यहाँ के साहित्य से हिंदी का समाज लगभग अनजान रहा है।

इसी को ध्यान में रखते हुए कामेंग पत्रिका के संपादन की जिम्मेदारी ली गयी है। इस पत्रिका का नाम अरूणांचल की नदी के नाम पर रखा गया इसके पीछे की मंशा सिर्फ इतनी है कि लोग ना सिर्फ यहाँ के साहित्य और समाज से वाकिफ हों वरन् यहाँ की भौगोलिक संरचना को भी जानें।

"निश्चित रूप से यह पत्रिका पूर्वोत्तर भारत के साहित्य समाज के साथ-साथ हिंदी के शोधार्थियों को एक मंच प्रदान करेगा।"

डॉ. अंजु लता
सम्पादक, कामेंग ई- पत्रिका

संरक्षक के सन्देश

कामेंग पत्रिका के प्रकाशन का इंतजार हम लंबे समय से कर रहे थे। इस पत्रिका का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पूर्वोत्तर के रचनाकारों तथा शोधार्थियों के लिए एक ऐसी पत्रिकाओं की आवश्यकता सदैव से रही है। मैं पिछले कई दशकों से पूर्वोत्तर भारत में हिंदी भाषा व साहित्य की सेवा कर रहा हूँ। यह क्षेत्र भाषा व सांस्कृतिक दृष्टि से विविधतापूर्ण रहा है। ऐसे में हिंदी भाषा का विकास तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग की स्थापना का कार्य इतना आसान नहीं था। इस कार्य को सम्पन्न करने में अनेक व्यवहारिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। ऐसे में हिंदी पत्रिकाओं का विकास तथा इस क्षेत्र से पत्रिका का संपादन करना एक सराहनीय कदम माना जा सकता है।

मेरा ऐसा मानना है कि कांमेग पत्रिका का संपादन पूर्वोत्तर भारत में भाषा व साहित्य के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। इस श्रमसाध्य कार्य के लिए पत्रिका के संपादक मंडल बधाई के पात्र हैं। मुझेउम्मीद है यह पत्रिका हिंदी भाषा और साहित्य का विकास करने के साथ हिंदी और हिंदीतर प्रदेशों में समन्वय के सेतु के रूप में कर्य करेंगी। मैं इस पत्रिका के उज्जवल भविष्य का कामना करता हूँ।

प्रो. अनंत कुमार नाथ
संरक्षक, कामेंग ई-जर्नल

कामेंग

हिंदी कहानियों में अभिव्यक्त विकलांग मनोविज्ञान

डॉ शिप्रा शुक्ला

सहायक प्रोफेसर , हिंदी विभाग , तेजपुर विश्वविद्यालय, असम

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 1-6 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

शोध-सार

मानव समाज ने अपने भीतर तमाम विविधताओं को समाहित किया है। समाज के इस ताने-बाने में कई ऐसे वर्ग दिखाई देते हैं, जिनका विकास मानव समाज के विकास के बरक्स अवरुद्ध दिखाई देता है। इन्हीं वर्गों में विकलांग वर्ग समाज के सबसे अंतिम पायदान पर नजर आता है। विकलांगता मानव जीवन की एक अपरिहार्य सच्चाई है। जब कोई व्यक्ति जन्म से अथवा जन्म के बाद किन्हीं कारणों के तरह शारीरिक, मानसिक अथवा स्तर पर आंशिक अथवा पूर्ण रूप से किसी कार्य को संपादित करने में समर्थ नहीं होता तब ऐसी स्थिति विकलांगता कहलाती है। समाज विकलांगजनों के प्रति आरंभ से ही नकारात्मक रहा है। सदियों के अन्याय एवं अनवरत शोषण के बाद कुछ हद तक आधुनिककाल में और व्यापक स्तर पर उत्तर-आधुनिक युग में इनकी पीड़ा को अनेक रूपों में वाणी मिली और इनसे जुड़े जरूरी सवालों ने विमर्श के गलियारे में कुछ जगह हाँसिल की। उपेक्षित व वंचित समाज को साहित्य ने संवेदना की भूमि प्रदान कर उनकी वेदना को हमेशा से समझने का प्रयास किया है। विकलांगों की दृष्टि से यदि हिंदी साहित्य पर गौर करें तो बहुत कम रचनाकार इस तरफ रचनारत डिकाही पड़ते हैं। इस शोध-आलेख का उद्देश्य है हिंदी कहानियों में अभिव्यक्त विकलांगों के मनोविज्ञान को समझना, समाज की मानसिकता का विकलांगों के मनोविज्ञान पर पड़ने वाले प्रभावों का विवेचन करना।

बीज शब्द: उत्तर-आधुनिकता, ज्ञानोदय, आधुनिक, विकलांगता, मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद, शोषण और मनोविज्ञान।

मूल– आलेख :ज्ञानोदय के उपरांत आधुनिक चिंतन को जिन तीन विचारधाराओं ने प्रमुख रूप से प्रभावित किया वे हैं मार्क्सवाद, विकासवाद और मनोविश्लेषणवाद। मनुष्य के मन का अध्ययन मनोविज्ञान और मनोविश्लेषणवाद के अंतर्गत किया गया है। इस शाखा ने मानव जीवन की समस्याओं को समझने के लिए नवीन माध्यमों एवं सिद्धांतों का सूत्रपात किया। इस संदर्भ में डॉ. देवराज उपाध्याय का कथन है कि "बीसवीं शताब्दी के विज्ञान तथा यथार्थवाद ने मनुष्य के स्वरूप को समझने के लिए दो साधन बतलाए हैं। एक तो कहता है कि मनुष्य के अंदर की ओर बाहर से झाँको। डार्विन और मार्क्स यही कहते हैं। दूसरे का कहना है कि मनुष्य को

समझना चाहते हो तो उसके भीतर से बाहरी दुनिया की ओर देखो। यह फ्रायड तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों का कथन है। अन्य मनोवैज्ञानिकों में निश्चय ही मैं उन आचरणवादियों की बातें नहीं करता जो मनुष्य की बाहरी क्रियाओं को ही मनोविज्ञान का विषय मानते हैं। दोनों विचारधाराओं में से किसी ने भी दूसरे पक्ष को सर्वथा अस्वीकृत ही कर दिया हो, यह बात नहीं। हाँ प्रधानता का अंतर अवश्य है। चील आकाश में मडराती रहती है पर उसकी दृष्टि रहती है पृथ्वी पर ही। यही हालत हमारे आधुनिक मनोवैज्ञानिक चकोर, रहता है जमीन पर ही, पर उसकी टकटकी बंधी रहती है आकाश में उगे चाँद की ओर। यही हमारे मार्क्सवादी विचार हैं"[1] मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न सिद्धांतों का प्रभाव साहित्य लेखन के क्षेत्र पर गहराई से पड़ा। परिणामस्वरूप मनुष्य के आंतरिक मन की जटिल परतों को समझते एवं खंगालते हुए विपुल साहित्य रचा गया।

हिंदी साहित्य की कहानियों ने अन्य शोषित एवं वंचित वर्गों की अपेक्षा विकलांग वर्ग की समस्याओं को कम ही उकेरा है, लेकिन फिर भी कई कहानियाँ ऐसी लिखी गई हैं जिनमें उनके सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक पक्ष की झलक दिखाई देती है। यह सच है कि विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक बाह्य कारण मनुष्य के मन को प्रभावित करते हैं और उसके बाद उनके कारण मन पर पड़ने वाले प्रभाव प्रतिक्रिया स्वरूप समाज में बाह्य रूप में दिखाई देते हैं। विकलांगों के मन का अध्ययन इस कारण भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि वे समाज में अनवरत शोषण प्रक्रिया से गुजरते हैं, जिनका गहरा असर उनके मन पर पड़ता है। आज विभिन्न अस्मितामूलक विमर्शों को समझने के लिए युंग और एडलर जैसे मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों को समझना भी जरूरी है। समाज में व्यक्ति की अस्मिता और उसकी अधिकार भावना के संदर्भ में एडलर अपनी पुस्तक 'द प्रेक्टिस एंड थियरी ऑफ इंडिव्युजल साइकोलॉजी' में यह विचार रखते हैं कि "हीनता की भावना ही अतिवादी स्थिति में हीनताग्रंथि (इनफिरियारिटी कॉम्पलेक्स) का रूप धारण करती है। अपने को प्रत्येक से श्रेष्ठ समझने की भावना अतिचार श्रेष्ठता ग्रंथि (सुपीरिआरिटी कॉम्पलेक्स) को जन्म देता है। हीनताग्रंथि अथवा श्रेष्ठताग्रंथि विरोधी दृष्टिगत होने पर भी विरोधी नहीं होतीं वे एक दूसरे की पूरक होती हैं। एक ही व्यक्ति में ये दोनों ग्रंथियाँ पाई जाती हैं। हीनता की ग्रंथि को व्यक्ति श्रेष्ठता भावना में बदलना चाहता है"[2] आगे हिंदी कहानियों में विकलांगता के मनोविज्ञान पर विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

व्यक्ति के मन पर अपने आसपास के परिवेश का गहरा असर पड़ता है चूंकि विकलांगों के लिए चाहे घर के अंदर का परिवेश हो या उसके बाहर के समाज का प्रायः प्रतिकूल एवं असमानता से भरा होता है। निरंतर उन्हें उपेक्षित कर किसी-न-किसी रूप में नकारा जाता है यह उपेक्षा उनके मनोविज्ञान को हीनताबोध के भाव से भर देती है। सिम्मी हर्षिता की कहानी 'इलायची के पौधे' में दृष्टिबाधित दीपू के व्यथित मन का जीवंत वर्णन मिलता है जहां अपने मित्रों द्वारा अपमान सहकर वह मानसिक रूप से व्याकुल हो जाता है और आत्ममंथन करता है "अब उसके दोस्त उसे खेलने में न कहने लगे हैं। कोई भी उसे अपने खेल का साथी बनाने को तैयार नहीं हो रहा। वे कहते हैं, "दीपू! अब तुझसे ठीक खेला नहीं जाता।

"हूँ। दूसरे खेलें मेरे कंचों से और मैं बुद्ध की तरह उन्हें देखूँ। जैसे कि मुझे खेलना न आता हो?" वह यह सारा अपमान, असमर्थता, अयोग्यता और पराजय कैसे सहे? "ठीक है, मैं देखूँगा भी नहीं" वह बुदबुदाता है। उसका मन उसे चिढ़ाता हुआ उससे कहता है, "दीपू ! तुझे अच्छा दिखाई भी कहाँ देता है, जो तू देखे भी? ठीक है, जा चारपाई पर चुपचाप लेट जा। जा। जा न !""[3] इसी प्रकार परिवारिक भेदभाव एवं तिरस्कार से जूझते हुए विकलांग मानसिक रूप से उस स्थिति में पहुँच जाते हैं जहां उनको अपना जीवन निरर्थक जान पड़ता है। उपहार कहानी की विजया का मन इसी निरर्थकताबोध से ग्रस्त है जहां वह कहती है... "जब जया दीदी के लिए लड़का खोजा जा रहा था, तब बाबूजी ने दिन रात एक कर दिया था। पर विजया तो फ़ालतू, रद्दी, निर्जीव व बेकार वस्तु है उसकी किसी को क्यूँ परवाह हो। ओह हो! यह अँधापन! जीवन के लिए कितना बड़ा अभिशाप है। मैं तो बस एक पत्थर की मूरत हूँ। यह कोई भी नहीं जानेगा कि यहाँ भी दिल धड़कता है।"[4]

पारिवारिक एवं सामाजिक रूप से बहिष्कृत होकर कई बार विकलांग व्यक्ति इतना टूट जाता है कि उसे कोई अपना दिखाई नहीं देता है। वह बेबसी और अकेलेपन का शिकार हो जाता है। यह स्थिति उसके मन पर बहुत से विकृत प्रभाव डालती है। जया जदवानी की कहानी 'साक्षी' में बीमार और विकलांग स्त्री पात्र परिवार के भीतर रहकर भी अकेलेपन से जूझती, टूटती और बिखरती दिखाई पड़ती है। "और अब बल्ब की पीली रोशनी में मैं अकेली खाट पर पड़ी हूँ। अकेली और बेबस अपने अँधेरों के साथ...। ये क्या लिख दिया किस्मत में मेरी भगवान ने यह घुटन, जलन, गुस्सा, नफरत। इस शरीर के अन्दर सिर्फ अंधेरा है। अन्दर भी बाहर भी। मैंने अपने जिस्म को देखा-काला, मोटा, सख्त.... मांस का लोथड़ा। दस साल में फैलकर तिगुना हो गया हैं इसका क्या करूँ मैं?"[5] गिरीराजशरण अग्रवाल की कहानी 'पर कटा परिंदा' में एक सड़क दुर्घटना के चलते दोनों पैर गँवाने वाला लड़का विभू मानसिक रूप से उद्विग्न हो जाता है। उसे अपना अस्तित्व संकटग्रस्त लागने लगता है। आस-पड़ोस के लोगों द्वारा मिलने वाली नफरत और हिकारत से उसका मन अकेलेपन की गहरी पीड़ा से भर जाता है। लेखक लिखते हैं कि "अब उसने कुछ ऐसा अनुभव किया कि उसकी दोनों टाँगे कट चुकी हैं। केवल धड़ शेष है जिसमें सांस तो है पर आस नहीं है, जिसमें सोचने की शक्ति तो है करने की शक्ति समाप्त हो गई है...और आज अपने आसपास फैले अकेलेपन को शायद उसने पहली बार इतनी गहराई से महसूस किया।"[6]

विकलांगों को समाज में जिस दया और बेचारगी के भाग से देखा जाता है कई बार ये भाव विकलांगों के भीतर हीनताग्रंथि बनकर उभरते हैं, तो कई बार प्रतिक्रिया स्वरूप खीझ और बेचैनी बनकर सामने आते हैं। यह अवस्था व्यक्ति को सहज और सामान्य नहीं रहने देती और व्यक्ति मनोवैज्ञानिक रूप से अस्थिर और तनावग्रस्त हो जाता है। 'आधा हाथ पूरा जीवन' कहानी की विकलांग पात्र मारिया अपने पापा और उनके दोस्तों द्वारा खुद पर उडेली जा रही सहानुभूति को सहन नहीं कर पाती और वह उनके प्रति द्वेष भावना से भर जाती है और मन ही मन में आत्ममंथन करते हुए सोचती है कि "मुझे पापा की उपस्थिती से उलझन होती है। उनसे भी...उनके दोस्तों से भी। इन सभी की आँखों में मेरे प्रति जो सहानुभूति और दया का भाव है उससे मुझे घृणा है। मैं ये सहन नहीं कर सकती कि लोग मुझपर तरस खाएं। चाहे वो पापा ही क्यों? न हों..."[7] यही उलझन और बेचैनी कई मौकों पर उग्र होकर उन्हें हिंसक

और अपराधी भी बना देती है। मनोविज्ञान के अनुसार कई दफा मनुष्य कि दमित इच्छाएँ कुंठा बनकर समाज में अपना विकृत प्रभाव डालती हैं। लगातार समाज की दुत्कार और उपहास को झेलते-झेलते 'इलायची के पौधे' कहानी का दीपू हिंसक हो जाता है। परिवार और समाज द्वारा उसकी बेचैनी को न समझ पाने की खीझ उसे उग्र बना देती है। "उसकी शांत उदासी, चुप्पी, समझ और विचारशीलता में से एकाएक अशांति, खोज, दाह, द्वेष, असहायता और दिशाहीन क्रोध उभर आता है। सबकी आँखें ठीक हैं तो मेरी क्यों नहीं?" उसके मन में चक्रवात उठने लगता है और घर में उसकी उठा-पटक मच जाती है। वह दोस्तों के साथ खेलते या बातचीत करते हुए लड़ाई और मार-कुटाई करने लगता है। मार-पीट में जीत-जीतकर भी उसे लगता है जैसे कि उसके साथी उससे आगे निकल गए हैं। वास्तव में हार तो वह ही रहा है।"[8]

जीवन एक जटिल संरचना है। इस जटिल संरचना में मनुष्य समाज और परिवार के भीतर रहते हुए विभिन्न कारणों से यातनाओं का शिकार होता है। ये यातनाएं मनुष्य को मानसिक रूप से बहुत गहराई तक प्रभावित करती हैं जिससे मनुष्य कई बार अवसाद की स्थिति में पहुँच जाता है। यह कहना अतियुक्ति न होगा कि समाज में विकलांग वर्ग इन यातनाओं को सर्वाधिक रूप से झेलता रहा है जिसका प्रतिकूल प्रभाव उनके मन पर पड़ता है। अपने परिवार को हर समस्याओं से बचाने वाले और उसे असीम प्रेम करने वाले प्रो. कुंदन 'कमाई' नामक कहानी में गहरी निराशा और मानसिक संताप के शिकार बन जाते हैं क्योंकि उनकी दृष्टिहीनता ही उन्हें अपनों के बीच उपेक्षित और अकेला बना देती है "प्रोफेसर साहब को सारी बातें ऐसे याद आ रही थी जैसे ढलान से पानी बहता है। मर्म को विदीर्ण कर देने वाली अनुभूति उनके भाव तंत्र पर प्रहार करती। जैसे अंधड़ में सब उड़ जाता है वैसे ही सयत्न संजोयी गयी जिजीविषा सूखे पत्ते की तरह उड़ने लगती। लगता कि कलेजा ही बाहर निकल पड़ेगा। जीवन में कभी प्रलाप न करने वाले प्रोफेसर कुंदन सबसे छिप-छिपकर घंटों रोते। उनके भीतर जैसे सन्नाटे शोर करते और भावनाएँ सिर पटकतीं, अतीत और वर्तमान का तीखा विरोध उनकी वेदना का विस्तार करता। वे बेसुध हो कभी बिस्तर पर पड़े रहते तो कभी मन बहलाव के लिए कुछ पढ़ने की कोशिश करते।"[9] विकलांगता के प्रति समाज का नकारात्मक रवैया विकलांगों के लिए स्वयं नकारात्मक स्थिति पैदा कर देता है। वे अपनी अक्षमता को अपने लिए कमजोरी और दुर्भाग्य मानकर मानसिक यंत्रणा और हताशा में डूब जाते हैं। 'दो दुखों का एक सुख' कहानी में यही स्थिति दिखाई पड़ती है जहां दोनों विकलांग पात्र अपने जीवन को कोसते हुए गहरी मानसिक पीड़ा में दिखाई देते हैं। "करमिया की आँखों में कुछ पानी-सा छलछला आया, "हरे, राम जी! इन गलित अंगों को बेर-बेर देखकर कलेजा कोचने को ही दे रखी हैं ये आँखें तूने मुझे? न होती ससुरी चमड़लोथ की जोड़ी, तो अपना कोढ़ अपनी ही आँखों से देखने का संताप तो न भोगना पड़ता।" उधर सड़क पार की सीढ़ी पर बैठा सूरदास भी मन-ही-मन कुढ़ रहा था कि अंधेपन से तो कोढ़ भला!"[10] विकलांग स्त्रियों के लिए घर और उसके बाहर का परिवेश उनकी सुरक्षा की दृष्टि से अधिक चुनौतीपूर्ण होता है जो उनकी मानसिक अवस्था पर तरह-तरह से प्रतिकूल प्रभाव डालता है। पारिवारिक भेदभाव, लोगों के ताने, घरेलू हिंसा, यौन शोषण एवं बलात्कार जैसी घटनाओं से ये लड़कियां अवसाद की स्थिति तक पहुँच जाती हैं। 'मौन का दर्द' कहानी में मुकबधिर लड़की दमयंती अपने भाई द्वारा बलात्कार किए जाने के बाद मानसिक रूप से टूटकर अवसादग्रस्त हो जाती है। "अथाह पीड़ा के गूंगे सागर में निरुपाय

गोते खाती रो-रोकर बेहाल वो पूर्ण निःसहाय थी। वह अचानक उठी, उसने अपने को पुनः नहलाया। इस नहलाने और पहले वाले नहाने में जमीन आसमान का अंतर था। पहले वाले नहाने में हर बूंद के साथ उसकी देह पर एक सपना बनाता था जल की शीतलता की अनुभूति में अभिलाषाओं के फूल खिलते थे। अब के नहलाने में सारे फूल मुरझा चुके थे। जैसे वो शव को धो रही थी। जैसे जीवन के चले जाने पर किसी का कोई ज़ोर नहीं चलता। वैसे ही सपनों और इच्छाओं के मर जाने पर कोई क्या कर सकता है? उसने बेबसी के खून को साफ किया, लाचारगी के जख्मों को धोया और अपने अनाथ होने की कपड़ों में लगी मुहर को साफ किया"[11]

मनुष्य के आंतरिक मन की निराशा और अवसाद उसे धीरे-धीरे खोखला बना देते हैं। कई बार तो वह अच्छा-बुरा सोचने और समझने की हालत में नहीं रह जाता और जीवन समाप्त कर देने के भाव उसके भीतर पनपने लगते हैं। विकलांग व्यक्ति परिवार और समाज की नफरत और उपेक्षा झेलते कई बार आत्महत्या करने को विवश हो जाता है। समाज की इस विद्रुप सच्चाई को 'उपहार' कहानी यथार्थपरक अभिव्यक्ति देती है जहां विजया के मन में आत्महत्या के भाव उसके जीवन शक्ति को कई बार परास्त करते हैं। "मैं क्या करूँ ईश्वर? मुझे तो अब कोई दिल्ली भी न पहुँचाएगा? पैसा मेरे पास नहीं, आँखें तूने दी नहीं। किस दम पर सब का विरोध करूँ? हे ईश्वर! क्या मेरा भविष्य इन्हीं मक्कारों के हाथों में सौंप दिया है? नहीं विजया नहीं, तुम्हें विरोध करना होगा। क्या औकात है मेरी? जिसके दम पर इनका विरोध करूँ? पर मैं मर तो सकती हूँ। एकाएक बिजली के समान यह विचार उसके मस्तिष्क में कौंधा- हाँ-हाँ ठीक है, मैं कल फांसी लगा लूँगी।"[12] इसी तरह 'कमाई' कहानी में प्रो मलकानी अपने बेटे और बहू के अमानवीय एवं घृणित व्यवहार से अंदर ही अंदर टूटते बिखरते हुए और अपने जीवन की एक मात्र अवलंब पत्नी को खोकर जीवन के प्रति उदासीन हो उठते हैं। आत्महत्या ही उन्हें अंतिम मार्ग नजर आता है। "प्रो मलकानी को जीवन का अब कोई अर्थ नजर नहीं आता था। असहनीय वेदना ने आत्महत्या को उनकी मंजिल बना दिया था। जैसे कुछ क्षणों के लिए धुँआ आकाश को घेर लेता है वैसे ही विभ्रम ने उनकी आत्मा को घेर लिया था। आजीवन दूसरों को जीवन की श्रेष्ठता का पाठ पढ़ाने वाले कर्मठ प्रोफेसर को आज जीवन सर्वाधिक निकृष्टतम त्याज्य और हेय प्रतीत हो रहा था। यह स्थिति वैसी ही थी जैसे सूर्योदय से पहले अंधकार की होती है।"[13]

भारतीय सामाजिक संरचना में विकलांगों और उनके परिवारजनों के संघर्ष का इतिहास बेहद लंबा और पुराना रहा है। कई बार यह भी देखने को मिलता है कि जानकारी के अभाव एवं सामाजिक दबाव के कारण किसी विकलांग सदस्य की विकलांगता का प्रतिकूल प्रभाव परिवार के अन्य सदस्यों पर भी पड़ता है। दरअसल विकलांगता को समाज में नकारात्मक एवं अभिशप्त स्थिति मानने के कारण उन सदस्यों को आयदिन समाज के अनेकानेक प्रश्नों से रूबरू होना पड़ता है, साथ विकलांगता की कुछ स्थितियाँ परिवार के अन्य सदस्यों के लिए भय और चिंता का कारण भी बन जाती हैं। पानू खोलिया की कहानी 'अन्ना' में मिरगी के दौरों से जूझती अन्ना को देख उसके छोटे भाई-बहन के मनोविज्ञान पर बेहद गहरा असर पड़ता है। कहानीकार की कलम लिखती है "वह अस्वभाविक ढंग से खामोश पड़ गई थी। अन्ना को दौरे पड़ते तो दोनों बच्चे अब एकदम आतंकित हो उठते और कहीं दूर से खड़े होकर असमंजस की बड़ी-बड़ी आँखों से खौफ़ खाये देखते रह जाते। अन्ना अब उनके लिए कोई अजूबा जन्तु थी। उससे वे दूर-दूर

ही बने रहते, बोलने से डरते”[14] जिस समाज में लड़की पैदा करने पर महिलाओं को अनेक प्रकार से प्रताड़ित किया जाता हो उसमें विकलांग लड़की पैदा करने वाली माँ तो परिवार के लिए किसी कलंक से कम नहीं मानी जाती है। उलाहनों और तानों की मार उसके मन पर गंभीर प्रभाव डालती है। भीष्म साहनी की कहानी ‘कंठहार’ में सुषमा नामक विकलांग लड़की को पैदा करने का दंश झेलते हुए उसकी माँ मालती स्वयं मानसिक अवसाद की गिरफ्त में चली जाती है। कहानीकार लिखते हैं “आईने के सामने खड़ी-खड़ी मालती सुबक उठी। मैंने किसी का क्या बिगाड़ा था, जो मुझे यह सज़ा मिल रही है? और लोग हँसते-खेलते हैं। इधर यह घर नरक बना हुआ है और वह फिर सिसकने लगी। बेटी के जन्म के बाद जीवन के पहले सात साल तो आशा और निराशा के बीच झूलते बीत गए थे तब भी मालती कई-कई बार पलंग पर लेटे-लेटे कई रात आँखों में काट देती। तकिया आंसुओं में भीग जाता।”[15]

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि किसी भी व्यक्ति का मनोविज्ञान अपने आसपास के परिवेश से प्रभावित होता है ऐसे में उपरोक्त विवेचन से इस बात के प्रमाण स्पष्ट रूप से मिलते हैं कि सामाजिक अवहेलना एवं उत्पीड़न के परिणाम स्वरूप विकलांगों की मानसिक स्थिति गंभीर रूप से प्रभावित होती है। वे कई बार उग्र एवं हिंसक बन जाते हैं, तो कुछ स्थलों पर आत्मलीन एवं मानसिक अवसाद से ग्रसित दिखाई देते हैं। कभी-कभी मानसिक एवं शारीरिक प्रताड़न इतना क्रूर हो जाता है कि विकलांगजन आत्महत्या के मार्ग पर भी चले जाते हैं। हिंदी के कई कहानिकारों ने विकलांगों के मनोविज्ञान को अपनी संवेदना से रचनात्मक आधार प्रदान करते हुए इस तरफ सोचने को प्रेरित भी किया है कि विकलांगों के प्रति व्याप्त दूषित मानसिकता को समाप्तकर उन्हें समाज की मुख्यधारा में शामिल किया जाए और एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में जीने का अधिकार प्रदान किया जाए।

संदर्भ सूची-

1. उपाध्याय, डॉ देवराज. आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान. इलाहाबाद : साहित्य भवन, 1963. पृ संख्या 85.
2. यादव, डॉ रेनू. "साहित्य और मनोविज्ञान का अंतर्संबंध." आखर त्रैमासिक ई-पत्रिका (2021): 08-15.

.3 हर्षिता, सिम्मी इलायची“ .के पौधे ”कुमारी, संध्या) .सं .(.हौसले की उड़ान .जयपुर : मोनिका प्रकाशन, 2020पृ .संख्या .67

.4 मलिक, कुसुमलता ”उपहार“ .कुमारी, संध्या) .सं .(.जीवन संग्राम के योद्धा .नई दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास प्रकाशन, 2019पृ .संख्या.331-330

.5 जादवानी, जया ”साक्षी“ .कुमारी, संध्या) .सं .(.हौसले की उड़ान .जयपुर : मोनिका प्रकाशन, 2020पृ .संख्या.116

.6 अग्रवाल, गिरिराजशरण पर“ .कटा परिंदा ”अग्रवाल, गिरिराजशरण) .सं .(.विकलांग जीवन की कहानियाँ .दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, .2002पृ संख्या.23

.7 निश्तर, खानकाही आधा“ .हाथ पूरा जीवन ”अग्रवाल, गिरिराजशरण) .सं .(.विकलांग जीवन की कहानियाँ .दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, .2002पृ संख्या.70

.8 हर्षिता, सिम्मी इलायची“ .के पौधे ”कुमारी, संध्या) .सं .(.हौसले की उड़ान .जयपुर : मोनिका प्रकाशन, 2020पृ .संख्या .68-67

.9 मलिक, कुसुमलता ”कमाई“ .कही-अनकही .नई दिल्ली : स्वराज प्रकाशन, .2014पृ संख्या.187

.10 मटियानी, शैलेश दो“ .दुखों का एक सुख ”कुमारी, संध्या) .सं .(.हौसले की उड़ान .जयपुर : मोनिका प्रकाशन, 2020पृ . संख्या.29

.11 मलिक, कुसुमलता मौन“ .का दर्द ”कही-अनकही .नई दिल्ली : स्वराज प्रकाशन, .2014पृ संख्या .09-108

.12 मलिक, कुसुमलता ”उपहार“ .कुमारी, संध्या) .सं .(.जीवन संग्राम के योद्धा .नई दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास प्रकाशन, 2019पृ .संख्या.341

.13 मलिक, कुसुमलता ”कमाई“ .कुमारी, संध्या) .सं .(.हौसले की उड़ान .जयपुर : मोनिका प्रकाशन, 2020पृ .संख्या-177 .78

.14 खोलिया, पानू ”अन्ना“ .अग्रवाल, गिरिराजशरण) .सं .(.विकलांग जीवन की कहानियाँ .दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, .2002 पृ संख्या.99

.15 साहनी, भीष्म ”कंठहार“ .अग्रवाल, गिरिराजशरण) .सं .(.विकलांग जीवन की कहानियाँ .दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, .2002पृ संख्या.107

शरण कुमार लिम्बाले का उपन्यास सनातन : दलितों के इतिहास को सामने लाने की कोशिश

डॉ. प्रीति प्रकाश

प्रखंड कल्याण पदाधिकारी, पिपरही शिवहर, बिहार

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 7 – 15 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

शोध-सार

मूलतः मराठी भाषा में लिखित एवं पद्मजा घोरपड़े द्वारा हिंदी में अनुदित शरण कुमार का उपन्यास ‘सनातन’, उस बहुसंख्यक इतिहास को दर्ज करने की कोशिश है जो मुख्यधारा द्वारा बहिष्कृत रहा है। शायद ‘सनातन’ को सिर्फ उपन्यास कहना भी एक अधूरी बात कहने जैसा है क्योंकि कथ्य और शिल्प की सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ यह उपन्यास इतिहास, दर्शन, चिंतन और विमर्श को भी नए आयाम प्रदान करता है। हिंदी भाषा में बहुत ही रूढ़ अर्थ में इस्तेमाल होने वाले शब्द सनातन को इस उपन्यास के लेखन द्वारा शरण कुमार लिम्बाले ने एक नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। इस देश में जातियाँ जितनी पुरातन है उतना ही पुरातन है उनके शोषण का इतिहास और वह इतिहास एक नयी रौशनी में इस उपन्यास में दर्ज है। दलित विचारधारा मराठी साहित्य में अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध और गज्झिन है। इतनी समृद्ध परंपरा का हिंदी में समावेश हिंदी में भी दलित विमर्श की दशा और दिशा को समझने हेतु आवश्यक है। प्रस्तुत आलेख द्वारा लेखक ने दलित विमर्श के बहिष्कृत इतिहास, दलितों के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन, उनके आचार विचार और खान पान जैसी आदतों के निर्माण, उनकी सांस्कृतिक पहचान और उनके नायकत्व की खोज जैसे विभिन्न पहलूओं पर बात करने की कोशिश की है।
बीज शब्द: जी. एस. धुर्वे, चिनुआ अचेबे, सनातन, दलित इतिहास का पुनर्लेखन, भीमा कोरेंगांव, स्तन-टैक्स, महार जाति, जाति और खाद्य आदतें, धर्म परिवर्तन, ब्राहमणवाद और हिंदुत्व, दलित नायकत्व

मूल– आलेख: “Untll the llons have thelr own hlstorlans, the hlstory of the hunt wlll always glorlfy the hunter.”“ जब तक शेरों के अपने इतिहासकार नहीं होंगे तब तक इतिहास में शिकारियों का ही गुणगान होगा” नाईजीरियन लेखक चिनुआ अचेबे की यह उक्ति अफ्रीकी परिदृश्य की है लेकिन यह भारत के बहुसंख्यक पिछड़े लोगों पर भी उतनी ही सटीक बैठती है। मूलतः मराठी भाषा में लिखित एवं पद्मजा घोरपड़े द्वारा हिंदी में अनुदित शरण कुमार का उपन्यास ‘सनातन’, उस बहुसंख्यक इतिहास को दर्ज करने की कोशिश है जो एक लम्बे समय तक अँधेरे में रहा। उसके लेखन की कभी जरूरत भी नहीं महसूस की गयी क्योंकि जिन्हें लिखना था वो उतने सशक्त नहीं थे कि लिख सके और जो लोग इतिहास लिख रहे थे वो अपने हिसाब से लिख रहे थे। इस सम्बन्ध में शरण कुमार लिम्बाले अपने उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं- “सभी धर्मों ने, प्रदेशों ने, भाषाओँ और संस्कृतियों ने दलितों को सहजीवन से ख़ास दूरी पर ही रखा। उनको अपवित्र माना। उनसे दूरी ऐसी बरती कि भेदभाव बन गयी। दलित अलग-थलग हो गए।” **(1)**

दलित यानि वो हिन्दू जो वर्ण परम्परा में किसी वर्ण में नहीं है, जो खुद को पंचम वर्ण मानता है। जिसका इतिहास सवर्णो द्वारा उनके शोषण का इतिहास है। म. ना. वानखेड़े कहते हैं- “दलित शब्द की परिभाषा में केवल बौद्ध अथवा पिछड़े हुए ही नहीं, बल्कि जो भो शोषित, श्रमजीवी हैं वे सभी ‘दलित’ परिभाषा में सम्मिलित होते हैं।” **(2)**

नामदेव ढसाल लिखते हैं- “दलित यानी कि अनुसूचित जाति, जन जाति, बौद्ध, श्रमिक जनता, मजदूर, भूमिहीन खेत मजदूर, यायावर और आदिवासी हैं। **(3)** शरण कुमार लिम्बाले अपने लेख ‘दलित साहित्य : स्वरुप और प्रयोजन’ में दलित शब्द की व्याख्या करते हुए लिखते हैं- “दलित अर्थात केवल हरिजन और बौद्ध नहीं, बल्कि गाँव की सीमा से बाहर रहने वाली सभी

अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन, खेत मजदूर, श्रमिक, दुखी जनता, बहिष्कृत जाति इन सभी का दलित शब्द की व्याख्या में समावेश होता है।" **(4)** शरण कुमार लिम्बाले का उपन्यास 'सनातन' वस्तुतः इस विस्तृत और समग्र परिभाषा के आधार पर ही दलितों के इतिहास को सामने लाने की कोशिश है। आमतौर पर इतिहास विजेताओं द्वारा लिखा जाता है लेकिन बहुसंख्यक दलित और दमित जाति ने तो ऐसी कोई उपलब्धि नहीं हासिल की, फिर उनके इतिहास में क्या लिखा जाएगा? इसका जवाब है कि उनका इतिहास वस्तुतः उनके शोषण और उत्पीडन का इतिहास होगा। यह उनके संघर्ष और उनके कोशिशों का इतिहास होगा। यह इतिहास होगा उस प्रक्रिया का जिसमे एक जाति ने दूसरी जाति को प्रताड़ित किया और लगातार पीछे की ओर धकेला। सनातन उपन्यास दलितों के इतिहास के विभिन्न पक्षों को सामने लाने की कोशिश है।

मुख्यधारा के इतिहास का पुनर्लेखन: 'सनातन' उपन्यास का फलक बहुत विस्तृत है। पूरा उपन्यास पढ़ते समय हम पाते हैं कि इतिहास की कई धाराएँ, कई युग, कई जाति एवं प्रजाति और विस्तृत भौगोलिक सीमा उपन्यास को विस्तार देती है। यहाँ वह इतिहास है जिसमे भीमा कोरेगांव, 1857 की क्रांति, आदिवासी संघर्ष, मालाबार में दलितों का संघर्ष, फुले और अम्बेदकर के आन्दोलन, दलितों के साथ किया गया विश्वासघात सब कुछ एक नयी रौशनी में दर्ज है।

" भीमा कोरेगांव के पास पेशवा की फौजें बड़े पैमाने पर थी। मराठा फौजों ने अंग्रेजी फ़ौज को चारों ओर से घेर दिया। भीमा नदी के उस पार पालकी में बैठे श्रीमंत पेशवा बाजीराव द्वितीय लड़ाई देख रहे थें। महार जाति के हाथ में शस्त्र देखकर वे बेचैन हुए। उन्हें यह अशुभ चिन्ह लगा। जिस पेशवाई ने महारों के कमर में झाड़ू लटका दिया और गले में मटकी वे महार आज वीरता का प्रदर्शन करते दिखाई दे रहे थें। इसकी उन्होनें कभी सपने में भी कल्पना नहीं की थी। उन्हें यह महापाप लग रहा था। वे मन में सोच रहे थें कि कुछ भी हो लेकिन ये महार हार जाये और उनके गले में यह मटकी लटकी रहनी चाहिए। .....पेशवाओं ने अपनी हार के दर्शन कर लिए थें। महारों ने धीरज से और जान की बाजी लगाकर पेशवाई को मिट्टी में मिला दिया था और सनातनी पुराणपंथी प्रभुत्व को हराया था। मराठा फ़ौज पुलगाव की दिशा में चली गयी। अपनी हारी हुयी सेना को लेकर पेशवा कर्नाटक में घटप्रभा नदी के परे भाग गये। अंग्रेजी फ़ौज उनका पीछा करती रही। महारों की जय की आवाजों से दिशाएँ गूँज उठीं। उनके लिए भीमा कोरेगांव वीरभूमि हो गयी थी।" **(5)**

"23 मार्च 1958 को झाँसी को घेरा गया। अंग्रेज फ़ौज रानी को हरा देगी इसके संकेत मिलने लगे। झलकारी बाई रानी का भेस पहनकर लड़ाई का नेतृत्व कर रही थी और रानी अपने दत्तक पुत्र को लेकर सही-सलामत निकल गयी। झलकारी बाई ने अपनी वीरता दाँव पर लगायी। मर्दानी झाँसी की रानी बनकर वे लडती रही।

झाँसी की रानी और झलकारीबाई दोनों महान स्त्रियाँ थीं। एक रानी थी, दूसरी सेविका! एक ब्राह्मण तो दूसरी निचली 'कोरी' जात की! दोनों वीर योद्धाएँ थी। रानी लक्ष्मीबाई ने कभी उनकी जाति नहीं देखी लेकिन इतिहास ने जाति को ही देखा।" **(6)**

अछूत स्त्रियों को वक्ष खुला रखकर भी छुटकारा न था। उन्हें अपने स्तनों के लिए कर देना पड़ता था। जिस स्त्री के स्तन का आकार बड़ा उसे ज्यादा कर देना पड़ता। जब कर वसूल करने वाले नांगेली के घर गये तब नांगेली ने अपने स्तन काटकर उन्हें दे दिए। अति रक्तस्राव से उनकी मृत्यु हुई। उसका पति चिरुक्ण्डन जब घर आया तब यह भयावह दृश्य देखकर वह भी पत्नी के साथ चिता पर चढ़ गया और उसने अपनी जीवन यात्रा भी समाप्त की। स्तनों पर कर के विरोध में आन्दोलन हुए। कर पद्धति समाप्त कर दी गयी लेकिन स्तनों को खुला रखने की रीत समाप्त न हो सकी। इसके लिए भी आन्दोलन छिड़े। मद्रास प्रेसिडेंसी के कमिश्नर ने राजा के पास शिकायत की। बदनामी की बात कही। इसका खुलासा माँगा। 26 जुलाई 1859 को त्रावणकोर के राजा ने महिलाओं को ऊपरी हिस्से पर वस्त्र पहनने की इजाज़त दी।" **(7)**

"रेजिमेंट के एक सिपाही को प्यास लगी थी। उसने पानी देने वाले सिपाही से पानी माँगा। सिपाही पानी देने लगा। पानी माँगने वाला सिपाही मंगल पांडे था और देने वाला मातादीन भंगी। मंगल पांडे के पास हवलदार ईश्वर प्रसाद आये और कहने लगे, "भंगी के हाथ का पानी मत पीओ! यह भंगी है।" मंगल पांडे ने पानी फेंक दिया। मातादीन गुस्सा हुआ और उसने मंगल पांडे को खरी- खरी सुनाई, 'अहा रे ब्राहमण! मेरे हाथ का पानी पीने से भ्रष्ट होते हो और कारतूसों की चर्बी तो गाय- सूअर की होती है। वह चलती है? ऐसे कैसे ब्राह्मण तुम लोग!" मातादीन भंगी की बात सुनकर मंगल पाण्डे सकते में आ गया। उन्हें जवाब देते न बना।. .....दूसरे दिन उन्होंने परेड ग्राउंड पर कारतूसो का आवरण खींचने से इनकार कर दिया।..... जेम्स ह्युसन परेड ग्राउंड पर आया। मंगल पांडे ने उनपर गोली चलायी। मेजर ह्युसन वहीं ढेर हो गया। मर गया।.....6 अप्रैल 1857 के दिन मंगल पांडे और 22 अप्रैल 1857 के दिन ईश्वर प्रसाद को फाँसी पर चढ़ाया गया। इसका फ़ौज के दिलोदिमाग पर बुरा असर हुआ। इस घटना का ज़िम्मेदार ठहराकर मातादीन को भी फाँसी दी गयी।" **(8)**

शरण कुमार लिम्बाले का उपन्यास 'सनातन' ऐसे गुमनाम लोगों की दास्ताँ हैं जिन्हें इतिहास ने कभी दर्ज करने की जरूरत ही नहीं समझी और अगर दर्ज भी किया तो बस नाम के लिए। शरण कुमार लिम्बाले का उपन्यास सनातन पढ़ते समय एक ऐतिहासिक यात्रा पर जाने का भान होता है। एक ऐसी ऐतिहासिक यात्रा जो नूतन दृष्टि और गहरी समझ भी प्रदान करती है और जीवन को और उसकी परिस्थितियों को देखने का एक नया नजरिया प्रदान करती है। उपन्यास की भूमिका में वो लिखते हैं- "इतिहास और परंपरा ने दलितों की भारी दुर्गत की है, उन्हें धोखा दिया है।... इतिहास या ऐतिहासिक व्यक्तियों के प्रति अनादर का कोई कारण नहीं है। शिकायत इतनी ही है कि इस देश से दलितों ने और आदिवासियों ने भी बेहद प्रेम किया है। देश के लिए त्याग किया है। बलिदान दिया है। इस ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। यह उपन्यास इसकी ओर ध्यान दे रहा है।" **(9)**

दलितों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन और उनके शोषण का इतिहास: जी. एस. धुर्वे अपनी पुस्तक 'भारत में जाति एवं प्रजाति' में लिखते हैं- "मराठा देश में महार, जो अछूतों में से एक जाति है, सड़क पर इसलिए नहीं थूक सकती थी क्योंकि एक शुद्ध जातीय हिन्दू का पैर यदि उससे छू जाता है तो वह दूषित हो जाता है, और इससे बचने के लिए उसे एक मिट्टी का पात्र को अपने गले

से लटकाकर रखना होता है जिससे वह थूक सके। इसके अलावा, उसे अपने साथ एक कांटेदार पेड़ की शाखा रखनी होती थी जिससे वह पाने पदचिन्हों को साफ़ कर सके और यदि कोई ब्रहंम वहां से गुजर रहा हो तो भूमि पर दंडवत करते हुए एक निश्चित दूरी पर लेट जाए, ताकि उसकी गंदी छाया उस पवित्र ब्राह्मण को अशुद्ध न करने पाए। **(10)**

सनातन उपन्यास में दलितों के इस जीवन को अभिव्यक्ति मिली है। उपन्यास की कहानी शुरू होती है 'सोनई' गाँव की महार बस्ती से। सोनई बहमनी राज्य का गाँव था। बहमनी राज्य पर मुसलमानों का शासन था। सोनई गाँव में भी हिन्दू संख्या में ज्यादा होने के बावजूद मुसलामानों के सामने डरे-डरे रहते थे। गाँव हिन्दू, मुसलमान और अछूत बस्तियों में बनता था। गाँव के बाहर बसी महार बस्ती लगभग कूड़ाखाना और हगनहट्टी में बसी थी। बस्ती के घर पहचान में आये इसलिए उन्हें अपने घर की छत पर जानवरों की हड्डियाँ ठूंसकर रखनी पड़ती थी।

'सिद्राक के घर की छत पर भैस के पैर की हड्डी ठूंसी थी, भीमनाक के घर पर फेफड़ा लटक रहा था। अम्बरनाक के घर पर गाय का पैर था तो भूतनाक के घर पर बैल का जबड़ा और धोंडामाय के घर पर बैल का सिंग।' **(11)**। सोनई बस्ती के ये महार भी गले में मिट्टी का घड़ा लटकाते हैं और झुनझुने वाली लाठी रखते हैं। ताकि गाँव वालों को उनके आने के पहले ही पता चल जाए और वे सतर्क हो जाए। महार यहाँ पाड़ेवारी के काम में लगे हैं। ये काम थे गाँव के लोगों से किराया वसूलना, तयशुदा रकम वसूलना, उसके लिए उनके पीछे पड़ना, गाँव में कोई बड़ा आसामी आया तो उसके लिए सारा इंतजाम करना, उसके घोड़े के लिए घास, पानी का बंदोबस्त करना, घोड़े की मालिश करना, ढिंढोरा पीटना, खेत फसल खलियान की देखभाल करना, पहरेदारी करना, जंगल पेड़ों की रक्षा करना, जंगली जानवरों को मारना, घाट में पहरेदारी करना, गाँव में आने जाने वालों पर नजर रखना, अनजाने लोंगों पर नजर रखना, शक उभरने पर गाँव के मुखियां को इत्तिला देना, चोरो को ढूँढना, गाँव के रास्ते साफ़ करना, मुर्दा जानवरों को हटाना, मौत की खबर देना, मुर्दों को जलाने के लिए लकड़ियाँ काटना, गाँव की सेवा करना, ऊँची जात वालों के लिए लकड़ियों का इंतजाम करना......... और इसके बदले मांगकर खाना। **(12)**

इन अनगिनत काम का मेहनताना था – जूठन। ये काम महार नकार भी नहीं सकते थें। नकारने पर उन पर जुल्म किया जाता था। महार न कहे तो उनके बीवी बच्चों को काम करना पड़ता था। ऐसा दर्ज किया गया है कि मराठाओं और पेशवाओं के शासन के अधीन महारों एवं मांगो को दोपहर तीन बजे के बाद तथा प्रातः नौ बजे के पहले पुणे के द्वारों से अन्दर आने की अनुमति नहीं थी क्योंकि प्रातः नौ बजे और दोपहर तीन बजे के बीच में शरीर की छाया सबसे अधिक लम्बी हो जाती है जिसके किसी उच्च- जाति, विशेष तौर पर किसी ब्राहमण के शरीर पर पड़ जाने से वह अशुद्ध हो सकता है। **(13)**

आगे चलकर उपन्यास की कथा का विस्तार झोल रियासत, देवगढ़ और औपनिवेशिक राष्ट्रों तक होता है लेकिन महारों की दशा कहीं भी नहीं बदलती है। रामपुर के महाराज के यहाँ यज्ञ होता है। हजारों ब्राह्मणों को न्योता दिया जाता है और फिर उनका भोज होता है। ब्राह्मणों द्वारा भोजन के बाद बचे हुए जूठन पर अस्पृश्य लोटते हैं क्योंकि उनकी ऐसी धारणा है कि ऐसा करने से उनके

शरीर पावन होंगे। **(14)** सनातन उपन्यास सदियों से दलितों पर हुए अन्याय और उनके शोषण का इतिहास है। दलित, मांस भक्षण और हिंदुत्व का इतिहास: दलित समाज के लिए भोजन हमेशा से एक प्रमुख समस्या रही है। पीने के पानी से लेकर खाना पकाने के तेल तक दलित समाज को हमेशा से भोजन और पोषण के लिए जद्दोजहद करनी पड़ी है। यही कारण है कि मरे हुए जानवरों का मांस उनके भोजन का एक प्रमुख हिस्सा रहा है। द ब्लूप्रिंट के एक आलेख में दलितों के भोजन प्रणाली पर एक आलेख में लिखा गया हैं- " Dallt food ls generally conslderedTamaslk because lt comes from a supposed place of lmpurlty and fllth. Dlscarded pars of a dead anlmal llke hooves, braln, and tall are a source of nutrltlon for some Dallt communltles, but they are assoclated wlth unclean and unhyglenlc eatlng practlces." **(15)**

दलितों के भोजन को तामसिक माना गया है क्योंकि ये अशुद्ध और गंदी जगहों से आते हैं। मरे हुए जानवरों के शरीर के बेकार हिस्से जैसे उनके खुर, दिमाग और पूँछ दलित समुदाय के लिए उनके पोषण का एक प्रमुख स्रोत रहे हैं। लेकिन उन्हें अशुद्ध और अस्वास्थ्यकर खाद्य आदतों से जोड़कर देखा जाता है।'"Names were asslgned to castes based on the food they ate, or more accurately, the food they were left wlth to eat. Mahars, ln Maharashtra, were known as mrutaharls, or those who eat dead anlmals. Valmlkls and Musaharls are stlll known ln Blhar and Uttar Pradesh, for they ate rats and joothan (scraps of food on a plate, left for garbage or anlmals) respectlvely. The food ltems on one's plate became lndlcatlve of the placement ln the caste hlerarchy – Brahmlns at the top consume vegetarlan food, non-beef eatlng non-vegetarlans are somewhere ln mlddle of the hlerarchy and beef and pork eaters are at the absolute bottom. Upper castes dld not want beef or pork, especlally the parts of the meat llke lntestlnes and other dlgestlve remnants, whlch came to Dallts and they developed these ltems to lnfuse taste and nutrltlon (Homegrown Staff 2018)." **(16)** दलितों की खाद्य आदतें ऐसा होने का कारण है कि उनके पास पोषण के विकल्प बहुत कम थें। जबकि तथाकथित उच्च जाति के लोगों के पास विभिन्न दूध से बने सामान, विभिन्न तरह के अनाज, दालें, मसाले और सब्जियां आसानी से उपलब्ध हैं। क्या यह विडम्बना नहीं ही कि जब उत्तर प्रदेश के मुसेहर या महाराष्ट्र के महार अपने भोजन के लिए चूहे और गाय के मांस पर निर्भर थे तब मैथिल ब्राहमण और कनौजिया ब्राह्मण अपने उच्च कोटि के भोजन और पाचन क्षमता के लिए जाने जाते हैं। एक पुरानी कहावत है – "तीन कनौजियों को तेरह चूल्हों से कम की आवश्यकता नहीं होती।" **(17)** सोनई की महार बस्ती में भी मरी हुयी गाय का आना उत्सव का कारण बनता है। गाय की चर्बी, उसकी जीभ, उसका मांस सब सोनई बस्ती के लिए किसी पकवान से कम नहीं। लेकिन गाय का मांस खाने के कारण उन्हें गाँव वालों की हिंसा का भी शिकार होना पड़ता है। गाय जब तक दूध देती है तब तक तो बड़ी जात वालों के काम आती है जब वो मर जाती है तब दलितों के हिस्से में आती है। तिस पर आफत यह कि मरने के बाद गाय हिंदुत्व के हाथों में अस्त्र

बन जाती है। हरिशंकर परसाई के व्यंग 'एक गो भक्त से भेंट' की एक प्रसिद्ध उक्ति है –'दूसरे देशों में गाय दूध के उपयोग के लिए होती है, हमारे यहां वह दंगा करने, आंदोलन करने के लिए होती है"। **(18)**

सनातन उपन्यास में भी महार मरे जानवर उठाने का काम करते हैं। वे उसकी खाल को बेचते हैं और उसके मांस को खाते हैं। अर्जुन खताल की गाय मर जाती है तो महार उसे खींचकर महार बस्ती लाते हैं। उस दिन पूरे बस्ती में दावत होती है। लेकिन रात में गाँव वाले महारों पर गो-हत्या का आरोप लगाकर उनकी पिटाई करते हैं। "देवराव पटवारी बोला, 'गाय पवित्र प्राणी है। उसके शरीर में तैतीस करोड़ देवता बसते हैं। गोमाता को मारते हो? उसका मांस खाते हो? तुम हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस पहुंचाते हो।" **(19)** उपन्यास के आखिर में भी जब भीमनाक का पोता कार्टर महारों को मृत गाय का मांस खाने से रोकता है और उसपर विष्टा फेंकता है, तो महारों से ज्यादा, गाँव वाले क्रोधित होते हैं। वो उसे मृत गाय पर विष्टा फेंकने के कारण जान से मार डालते हैं। हालाँकि कार्टर की हत्या के मूल में उसका ज्ञानी होना और धर्म के सुधार की कोशिश करना है लेकिन हिंदुत्व वादी ताकतें गाय की आड़ में ही उसकी हत्या करती है।

दलित समाज के बदलाव का इतिहास: सनातन उपन्यास को इस बात का श्रेय भी जाता है कि उसमें समाज के बदलाव का इतिहास भी दर्ज है। ये बदलाव समय के साथ हुए हैं। अंग्रेजों के आगमन ने दलितों के लिए सेना में भर्ती के रास्ते खोल दिए। पहली बार दलितों को यह महसूस हुआ कि वो सिर्फ झाडू नहीं उठा सकते बल्कि बन्दुक भी चला सकते हैं। कवि अनुज लुगुन अपनी कविता 'भीमा कोरेंगाव: इतिहास' में लिखते हैं-

"ताकतवर को हराया जा सकता है

और कमजोर भी ताकतवर हो सकता है

इतिहास ही बताता है यह" **(20)**

भीमा कोरेंगाव में उनकी जीत ने उनके इस विचार को और पुख्ता किया। धर्मान्तरण ने उनके सामने धर्म की बेड़ियों को तोड़ने का विकल्प रखा। यद्यपि पलायन भी दलितों के लिए दुर्भाग्य की तरह था लेकिन लम्बे समय के अंतराल में पलायन ने उन्हें जीवन जीने का नया रास्ता तो सूझा ही दिया है।

धर्म परिवर्तन का इतिहास: अंग्रेजों के भारत आगमन ने जाति व्यवस्था को बहुत नजदीक से प्रभावित किया। इसके चित्र सनातन उपन्यास में भी नजर आते हैं। एक तरफ तो उन्होंने महारों के हाथ में झाडू की जगह बन्दूक थमा दी तो वही नरसोपंत जैसे ब्राह्मण को फांसी की सजा देकर ब्राह्मण सत्ता को खतरे में डाला। अछूतों के लिए धर्मान्तरण की राह खोलकर भी उन्होंने जाति व्यवस्था को चुनौती दी। हालांकि इसके लिए उन्हें भीषण विरोध का सामना भी करना पड़ा।

‘सनातन’ उपन्यास में धर्म-परिवर्तन और उसके कारण नजर आते हैं। अम्बरनाक महार के दादा बादनाक ने धर्म परिवर्तन किया और वह चाँद अली बन गया। मुसलमानों के शासन में ऐसा करके उसकी हालत सुधरी। उसका पोता अकबर अली महारों के प्रति सद्भाव रखता। गाँव के हिन्दू मुसलमानों से डरते थें। भीमनाक की माँ की लाश को जब गाँव वालों ने अपने खेत से ले जाने से मना कर दिया तब अकबर अली ने उसे अपनी खेत में जगह दी।

उपन्यास में इसाई धर्म में धर्मान्तरण देवगढ़ के रतनाक महार और उसके परिवार ने किया। रतनाक ने अपने लड़के जतनाक की शादी में घी परोसा। यह सुनकर सनातनी लोग क्रोधित हो गए। ‘गुंडा लोग शादी के मंडप में घुस आये। उन्होंने परोसने वालों को लाठियों से पीटना शुरू किया। रसोई में मिट्टी मिला दी। पका हुआ सब मिट्टी में फेंका। भोजन करने बैठे लोगों को मार-मारकर उठाया। थालियाँ लात मारकर उडायी। जो कुछ बोला उन्हें नीचे गिरा- गिराकर लताड़ा। दूल्हे जतनाक को काफी पीटा। दुल्हन के भाई की हत्या की।...........महार बस्ती का आक्रोश सुनकर फादर फ्रांसिस दौड़ा चला आया था। ‘प्लीज स्टॉप इट फॉर गॉड्स सेक!`वह बोले जा रहा था। वह बोले जा रहा था।.... फादर फ्रांसिस बिना डरे रतनाक महार के पास खड़ा था। उसको गले लगाया। रतनाक महार दहाड़ मारकर रोने लगा।” **(21)**

इस घटना के बाद रतनाक महार और उसके पूरे परिवार ने इसाई धर्म को अपना लिया। उन्हें चर्च का सहारा था इसलिए कोई कुछ न कर सका। स्पष्ट है कि धर्मान्तरण, दलित जातियों द्वारा अपनी हालत में सुधार करने के लिए किया गया। इसका कुछ फायदा उन्हें जरूर मिला। लेकिन धर्मान्तर के बाद भी महार, महार ही रहे। सिद्नाक ने बप्तिस्मा कराकर इसाई धर्म अपना लिया और उसे नया नाम मिला फिलिप। लेकिन उसके बेटे वॉरन की शादी में बहुत परेशानी आती है। उच्च जाति के ख्रिश्चन निम्न जाति के ख्रिश्चन को लड़कियां देते नहीं थे। वॉरन कहता हैं- ‘महार होने पर भी धमकाया जाना! ख्रिश्चन होने पर भी वही! मुसलमान होने पर भी वही।’ **(22)**

ब्राह्मणवाद की पहचान: भारत में हर जगह जातियों के बीच सामाजिक प्रधानता की निश्चित वरीयता मौजूद है, जिसके अनुक्रम में ब्राह्मण शीर्ष पर है। **(23)** ‘सनातन’ उपन्यास में भी वह शीर्ष पर ही है और शीर्ष पर बने रहने के लिए तमाम जोड़ घटाव करता है। अपनी श्रेष्ठता को बनाए रखने के लिए वह नाना प्रपंच रचता है। उपन्यास का एक ब्राह्मण पात्र उमाशंकर कहता है कि उसे हिन्दू धर्मग्रन्थ पढ़ते हुए अपार आनंद होता है क्योंकि इनमे ब्राह्मणों की श्रेष्ठता वर्णित की गयी है। मुख्य ब्राह्मण पात्र गोविन्द भट्ट और उसके पुत्र मोरोपन्त एवं नरसोपंत ब्राह्मणवाद की ध्वजा लहराने में कोई कसर नहीं रखना चाहते हैं। गोविन्द भट्ट कहता है कि हिन्दू धर्म मंदिर, धर्मस्थल की जगह ब्राहमण की जिह्वा पर टिका है। ब्राहमण यहाँ के भू देव हैं, धर्म को बचाने के लिए यदि भगवान् अवतार नहीं ले रहे तो फिर ब्राह्मण को ही इसका बीड़ा उठाना चाहिए। उसे दुष्टों का संहार करना चाहिए। आगे जाकर उसका पुत्र नरसोपंत फादर एडमंड की हत्या कर देता है जबकि वह उसकी बुद्धि और स्मरणशक्ति से प्रभावित हुआ है। लेकिन उसका भय कि फादर हिन्दू धर्म को और फिर ब्राह्मण सत्ता को खतरे में डाल देगा उसे ऐसा करने को मजबूर करता है।

नरसोपंत के बाद उसका भाई मोरोपन्त इस दायित्व को संभालता है। वह मोरोपन्त के पुत्र वेदांत को पिता के समान प्रेम भी देता है और ब्राह्मणवाद की घुट्टी भी पिलाता है। वह वेदांत को समझाता है कि हिदुत्व की भावना को तेज़ बनाना होगा तभी ब्राह्मणों का कल्याण संभव है। एक हाथ बहुजनों के कंधे पर और दूसरा पिछड़ी जातियों के कंधे पर रखना होगा। दलित, मुसलमान, ख्रिश्चन जैसे अल्पसंख्यकों पर ध्यान न देकर बहुसंख्यकों की भावना को छूना होगा। "धर्म को तलवार की तरह इस्तेमाल करना सीखना चाहिए।... फिर एक बार प्रभु रामचंद्र को गद्दी पर बिठाना होगा।' इतना कहकर मोरोपन्त ने वेदांत की पीठ थपथपाई।" **(24)**

उपन्यास के आखिरी पन्नों पर वेदांत के नेतृत्व में हिन्दू वाहिनी के गठन और उसके द्वारा धर्मान्तरण कर रहे लोगो को धमकाने का दृश्य है। हिन्दू वाहिनी 'कार्टर' की हत्या कर देती है क्योंकि उसने मृत गाय पर विष्टा फेंक कर महारो को उसे खाने से रोका था।

उपन्यास में ब्राह्मणों के जीवन में होने वाले परिवर्तन भी दर्ज हैं। मराठा उथल-पुथल के दौरान और उसके बाद ब्राह्मण बड़ी संख्या में हथियारों के पेशे में प्रवेश कर गए थे। **(25)**

दलित, स्त्री, आदिवासी विमर्श: सनातन उपन्यास में दलित विमर्श अपने विस्तार के साथ दर्ज है। यहाँ स्त्रियाँ, आदिवासी और अस्पृश्य सभी अपना विद्रोह दर्ज करते हैं। पार्वती, प्रमिला, मर्गी, ललिता, सरस्वती जैसे तमाम स्त्री पात्र बुद्धिजीवी और विद्रोही हैं। सरस्वती अपने पुत्र वेदान्त को मानवता का सन्देश देती है- "यह देख मेरा मुंडा हुआ सिर! मेरा सफ़ेद माथा... खाली गर्दन... दिख रहा है तुझे? मैं मनुष्य हूँ.... लेकिन मुझे मनहूस ठहराया गया.. वे चल बसे... मैंने मौत की यातनाएं झेली है। तू मनुष्य बन।"**(26)**

पाटिल के आदमी मर्गी के साथ गलत करते हैं। लेकिन वह डरती नहीं है, विरोध करती है। "... आने दे पाटिल को.... मैं उससे थोड़े ही डरती हूँ? कह दो उसे कि आ जाए वह। मैं खुद नंगी होकर उसके सामने खड़ी रहूंगी। देखने दे उसे मेरी गांड। उसकी माँ की गांड भी तो ऐसी हो होगी न? समझने दे उसे कहाँ से जन्मा वह।" **(27)**

तापी नदी के किनारे के बांसवन के आदिवासी अंग्रेजों का विरोध करना चाहते हैं। उनकी जात पंचायत बैठती है। आदिवासी अपने गुस्से का इजहार करते हैं- "डॉक्टर घर में घुसता है। औरतों को जांचता है। फादर आता है.... 'प्रार्थना करो' कहता है.... मास्टर आता है.... स्कूल चलो बोलता है..... जमींदार के लोग आते हैं...लगान दो कहते हैं। ठेकेदार के लोग आते हैं 'काम पर चलो कहते हैं। पुलिस आती है 'डाका तुम्ही ने डाला कहती है.... किस किस को जवाब दें? हमें यह दखलंदाजी नहीं चाहिए। **(28)** आगे चलकर रामपुर के आदिवासी विद्रोह कर देते हैं। तीन दिन तक वो रामपुर पर राज करते हैं और फिर खुद लौट जाते हैं। लेकिन अंग्रेजों और भू-पतियों की मिलीभगत के कारण उनका शोषण लगातार होता रहता है।

दलित नायकत्व की स्थिति: मराठी लेखक बाबूराव गायकवाड़ लिखते हैं- "देश के लिए लड़ने वाले सभी जाति धर्म के लोग थे पर निचले स्तर वाला अछूत मनुष्य वहां कभी नायक नहीं हुआ।" **(29)** अपने एक साक्षात्कार में शरण कुमार लिम्बाले

कहते हैं कि रामायण में हमारा नायक 'शम्बूक' था जिसकी हत्या हो गयी। मुख्यधारा के साहित्य में दलित नायक का केन्द्रीय किरदार के रूप में आना अभी भी दूर की कौड़ी है। सनातन उपन्यास में भी कई दलित किरदार हैं जो नायकत्व के गुण से परिपूर्ण है लेकिन उनकी जाति उनके जीवन के त्रासद अंत का कारण बनती है। महार बस्ती की पार्वती विलक्षण किस्सागो है। वो कहानियां सुनाती है, महारों के जन्म की कहानी, उनकी बुरी स्थिति की कहानी, अमृतनाक महार की कहानी, सांस्कृतिक और चारित्रिक रूप से वह बहुत समृद्ध है लेकिन उसका अंत होता है बुर्ज बाँधने के पूर्व दी जाने वाली बलि के कारण। माणिक महार भी बहुत उज्जवल चरित्र का है, उसे रास्ते याद रहते हैं, वह परिश्रमी है और अंग्रेजों और हिन्दुओ दोनों के लिए पथ प्रदर्शन का काम करता है। लेकिन उसकी हत्या अंग्रेज इसलिए कर देते हैं ताकि वो बांस वैन के आदिवासियों को उनका पता मत दे दे। अगर अंग्रेज उसे न मारते तो हिन्दू राव पाटिल उसे मार देता क्योंकि उसे शक हो गया कि उसने उसकी बहु के साथ कुछ गलत किया है। भीमनाक सिद्नाक भी विद्रोही हैं। वो अपने पाड़ेवारी के काम को लात मारकर सेना की नौकरी करते हैं। लेकिन जाति के कारण वो भी कभी उत्थान को प्राप्त नहीं कर पाते। आदिवासी चेनन्या अपने गाँव का सरपंच है, वो फैसले सुनाता है, और न्याय करता है। लेकिन उसकी जमीन हडपने के लिए हिंदूराव पाटिल उसे जान से मार देता है। भीमनाक का पोता कार्टर भी संभावनाओं से भरा हुआ है। अच्छी अंग्रेजी बोलता है, उसके ह्रदय में करुणा है और वह तर्क भी करता है। लेकिन उसकी हत्या भी हिन्दू वाहिनी वाले कर देते हैं। ऐसे कई गुमनाम नायकों को लेकर सनातन उपन्यास एक बृहद संसार रचता है। एक ऐसा संसार जो जितना कहानी है उतना ही इतिहास, जिसमे चिंतन और दर्शन दोनों है, जिसमे शोषण और उसका विद्रोह दोनों शामिल है।

निष्कर्ष :_सनातन उपन्यास में अतीत हैं और वर्तमान हैं, यहाँ कहानी है और हकीकत है, यहाँ शोषक हैं और शोषित हैं, यहाँ इतिहास है और है इतिहास की कहानी। यहाँ चिंतन और दर्शन है और है एक नयी दृष्टि। अंग्रेजी के लेखक जॉर्ज ओरवेल लिखते हैं- "The most effectlve way to destroy people ls to deny and obllterate thelr own understandlng of thelr hlstory." "लोगों को ख़त्म करने का सबसे प्रभावी तरीका होता है उनकी खुद के इतिहास को लेकर बनी हुयी समझ को नकार देना और मिटा देना।" शरण कुमार लिम्बाले का उपन्यास 'सनातन' इस नकारे और मिटाए गए इतिहास को फिर से लिखने की कोशिश है और लेखक इस कोशिश में सफल भी होते है ।

संदर्भ सूची-

1. लिम्बाले, शरण कुमार.(भूमिका). सनातन,नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2020
2. म. ना. वानखेड़े., दलितों का विद्रोही वांग्मय, पृष्ठ 73

.3 नामदेव ढसाल, दलित पंथर का जाहीरनामा

.4 लोमानी, रमेश मनोहर .हिंदी की दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक विवेचन, मैसूर विश्वविद्यालय

.5 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ117-116

.6 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ154

.7 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ163

.8 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ152

.9 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020

.10 जी .एस .घुर्वे, जाति व्यवस्था की विशेषताएं, भारत में जाति एवं प्रजाति

.11 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ13

.12 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ19

13. Russel, I, pp72-3

.14 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ170-

15. https://theblueprlnt.news/commentary/2021/09/a-cullnary-reclamatlon-of-dallt-survlval

16. https://mpp.nls.ac.ln/blog/dlgestlng-caste-graded-lnequallty-ln-food-hablts/

17. Rlsley, 2 Pg 159

.18 हरिशंकर परसाई, एक गोभक्त से भेंट, परसाई ग्रंथावली

.19 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ34

.20 अनुज लुगून, पत्थलगड़ी, पृष्ठ113

.21 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020

.22 पृष्ठ84

.23 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ126

.24 जी .एस .घुर्वे, भारत में जाति एवं प्रजाति, पृष्ठ4

.25 शरण कुमार लिम्बाले, सनातन, पृष्ठ185

.26 जी .एस .घुर्वे., भारत में जाति एवं प्रजाति, पृष्ठ10

.27 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ186

.28 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ175

.29 लिम्बाले, शरण कुमार).भूमिका .(सनातन,नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ132

.30 बाबूराम गायकवाड, दृष्टि, पृष्ठ681

संक्षिप्त रूप में कामरूपी और गोवालपरीया उपभाषा का तुलनात्मक विश्लेषण

डॉ॰ प्रवीण बरा

पूर्व शोधार्थी, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 16 – 23 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

शोध-सार

असम एक बहुभाषी प्रदेश है। यहाँ सौ से भी अधिक भाषाएँ एवं उपभाषाएँ विभिन्न जाति-जनजाति द्वारा बोली जाती हैं। प्रत्येक जाति-जनजातियों की अपनी-अपनी भाषाएँ होने के बावजूद भी वे साधारणतः संपर्क भाषा के रूप में 'असमिया' भाषा का प्रयोग करते हैं। असमिया असम राज्य की प्रधान एवं मुख्य भाषा है। प्रस्तुत आलेख में असम प्रदेश की इसी असमिया भाषा के दो उपभाषाएँ, 'कामरूपी' एवं 'गोवालपरीया' का विवेचन किया गया है। इन दोनों उपभाषाओं के संक्षिप्त विशेषताओं को देखे हुए उनके बीच पाए जानेवाले सम्यक अंतर का विश्लेषण किया गया है। कामरूपी उपभाषा और गोवालपरीया उपभाषा में यह अंतर शब्द-अर्थ, वाक्य-विन्यास, ध्वनि, रूप आदि विभिन्न क्षेत्र के आधार पर किया जा सकता है। क्षेत्रफल के हिसाब से असम प्रदेश को तीन बड़े भागों में बांटा गया है, जैसे- ऊपरी असम, मध्य असम और निम्न असम। तथा उपर्युक्त दोनों उपभाषाएँ निम्न असम में प्रचलित प्रधान एवं मुख्य उपभाषाएँ हैं।

बीज शब्द: स्वराघात शब्द, उपभाषा, ध्वनि-तात्विक, रूप तात्विक, ध्वनि-तात्विक

मूल– आलेख: कामरूपी उपभाषा निम्न असम के अंतर्गत कामरूप जिला में प्रचलित एक महत्वपूर्ण उपभाषा है। डॉ॰ उपेंद्रनाथ गोस्वामी जी ने कामरूपी उपभाषा के संबंध में विस्तृत विवेचन किया है। उनके '*A Study on* पुस्तक इस संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका '*Kamrupi : A dialect of Assamese*निभाते हैं। [1] डॉ॰ गोस्वामी जी ने कामरूपी उपभाषा को प्रधानतः पश्चिमी, मध्य और दक्षिणी तीन क्षेत्रीय उपभागों में बांटा हैं। गोस्वामी जी के अनुसार कामरूपी उपभाषा का पश्चिमी क्षेत्र के अंतर्गत बरपेटा, सुंदरीदिया, पाटबाउसी, भवानीपुर आदि आते हैं तथा नलबारी जिला के चारों ओर स्थित अंचल मध्य कामरूपी के अंतर्गत आते हैं और दक्षिणी कामरूपी के अंतर्गत पलाशबारी, छयगाँव, बको आदि आते हैं। [2] भाषाविद डॉ॰ रमेश पाठक जी ने कामरूपी उपभाषा के अंतर्गत पाँच क्षेत्रीय रूप

बताया है, जैसेबरपेट -ीया, नलबरीया, पातिदरंगीया, छयगयां और गुवाहाटीया। [3] भाषाविद बिभा भराली जी ने अपनी पुस्तक 'कामरूपी उपभाषा एटि अध्ययन :' में कामरूपी उपभाषा को दो प्रधान क्षेत्र में बांटा है।

क) उत्तर कामरूपी और

ख) दक्षिण कामरूपी। [4]

बिभा भराली जी ने उत्तर कामरूपी और दक्षिणकामरूपी के अंतर्गत दोदो उपवर्गीय क्षेत्रों को दिखाया है। -पश्चिमी कामरूपी। ठीक इसी तरह दक्षिण कामरूप के -पूर्वी कामरूपी और उत्तर-उत्तर कामरूपी के अंतर्गत उत्तर -जैसे पश्चिमी आदि उपभागों को दिखने का प्रयास किया है।-पूर्वी और दक्षिण-अंतर्गत दक्षिण

अतः कामरूपी उपभाषा के अंतर्गत अनेक उपभाग विद्यमान हैं। अर्थात समग्र कामरूप में कामरूपी उपभाषा एकरूपता से प्रयोग नहीं होते हैं। विभिन्न क्षेत्र के अनुसार कामरूपी उपभाषा की भाषित विशेषताएँ कही न कही पृथक दृष्टिगोचर होते है। इस संदर्भ में भाषाविद दीपांकर मरल ने उल्लेख किया है कि" -Kamrupi dialect of Assamese does not mean that only one dialect is spoken in Kamrup nor does it mean that there is no variation in Kamrupi dialect, but it means that the dialects of Assamese in the Kamrup region share certain distinguishing characteristic features which mark it different from other regional dialects of Assamese." [5] तथा कामरूपी उपभाषा में अंतर्निहित कुछ ख़ास भाषातात्विक विशेषताओं को निम्न -रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

क) कामरूपी उपभाषा में शाब्दिक स्वराघात शब्दों के आदि वर्ण में होते हैं, जबकि मानक असमिया भाषा के कथित रूप में स्वराघात उपांत्य (अंतिम से पहले का) वर्ण में होते हैं। इसके फलस्वरूप शब्दों के मध्य स्थान में स्थित स्वर प्रायः लुप्त होकर संयुक्त व्यंजन की सृष्टि होती है। जैसे- मानक असमिया के '*भोमोरा*' (भौंरा) > कामरूपी उपभाषा में '*भोम्रा*' उच्चरित होते हैं। इसी तरह '*निगोनी*' (चूहा) > '*निंग्रि*'।

ख) कामरूपी उपभाषा के शब्दों में दो 'आ' ध्वनि एक साथ उच्चारण हो सकते हैं, जबकि मानक असमिया भाषा में दो 'आ' ध्वनि एक साथ होने से प्रथम 'आ' ध्वनि 'अ' या 'ए' ध्वनि में परिवर्तित होकर उच्चरित होते हैं। जैसे- मानक असमिया के *रजा* (राजा), *चका* (पहिया) आदि शब्द का कामरूपी उपभाषा में क्रमशः *राजा, चाका* आदि उच्चरित होते हैं।

ग) कामरूपी उपभाषा में दो संयुक्त-स्वर के उपरांत तीन स्वरों का संयुक्त रूप भी शब्दों में प्रयोग होते हैं। जैसे- मानक असमिया- '*बामुनिया*' (ब्राह्मण)> '*बाउइन्ना*', '*केरेलुवा*' (गोजर, एक प्रकार का कनखजुरा) > '*केउइला*' आदि।

घ) मानक असमिया भाषा में एक से अधिक वर्ण युक्त शब्दों के अंत में स्थित 'ऐ' और 'औ' ध्वनि कामरूपी में क्रमशः 'ए' और 'ओ' रूप में उच्चरित होते हैं। उदाहरण- मानक असमिया- '*भातौ*' (तोता) > '*भातो*', '*काबौ*' (प्रार्थना) > '*काबो*', '*बांधै*' (दोस्त) > '*बांधे*' आदि।

ङ) मानक असमिया के दो या तीन वर्ण युक्त शब्दों के बीच में स्थित 'अ' ध्वनि कामरूपी उपभाषा में 'आ' तथा आदि स्थान में 'इ' होने से बीच के 'अ' कभी-कभी 'ए' रूप में उच्चरित होते हैं। जैसे- '*मरम*' (प्यार) > '*मराम*', '*तपत*' (गरम) > '*तपात*', '*दीघल*' (लंबी) > '*दिघेल*', '*पागल*' > '*पागेल*'।

च) दो वर्ण युक्त शब्दों के आदि स्थान में 'ओ' और अंत में 'अ' और 'आ' होने से कामरूपी उपभाषा में आदि स्थान 'अ' में परिवर्तित होकर उच्चरित होते हैं। जैसे- '*ठोंगा*' (झोला) > '*थंगा*', '*मोना*' (झोला) > '*मना*', '*तोर*' (तेरा) > '*तर*', '*मोर*' (मेरा) > 'मर' आदि।

-मानक भाषा के प्रायः अल्पप्राण ध्वनि कामरूपी में महाप्राण रूप में उच्चरित होते हैं। उदाहरण'*भोक*' (भूख) > '*भूखभोख/भखा/*', '*शुकान*' (सूखा हुआ) > '*सुखान/सुखनासुखुना/*' आदि।

गोवालपरीया उपभाषा:

निम्न असमके दो प्रधान उपभाषाओं में कामरूपी के पश्चात गोवालपरीया उपभाषा भी उल्लेखनीय है। गोवालपरीया उपभाषा के अंतर्गत धुबुरी, सत्रशाल, दक्षिण शालमारा, बोंगाईगांव, कोकराझार, गौरीपुर, अभयापुरी, गोवालपारा, दूधनोई, धूपधारा, बिजनी, आदि क्षेत्र आते हैं। 'गोवालपरीया' नाम को लेकर विद्वानों में मतभेद देखा गया है। ग्रीयर्सन और डॉ॰ वाणीकांत काकती जी ने इसे 'राजवंशी' कहा है, डॉ॰ उपेंद्रनाथ गोस्वामी जी ने इसे 'देशीभाषा', सुनीति कुमार चेटर्जी ने इसे 'बँगला के उत्तर के अंचल की उपभाषा', सुकुमार सेन जी ने इसे 'उत्तरबंगीय उपभाषा' तथा कोई कोई विद्वान इसे-'कमतापूरी' आदि नामों से अभिहित किया है। ग्रीयर्सन के भाषा में "When we cross the river (Brahmaputra) coming from Dhaka, we met a well-marked speech in Rangpur and the districts to its north and east. It i scalled Rajbangshi, and whileu ndoubtedly belonging to the eastern branch ,has still point sof difference which lead us to class it as a separate dialect". [6] ग्रीयर्सन जी के अनुसार ही डॉ॰ वाणीकांत काकती जी ने उल्लेख किया किThe spoken dialects " -of the Goalpara district seem to have been greatly contaminated with the admixtures of the the dialect that was evolved under the domination of the Koch Kinggs of -Rajbangshi dialect ".Bihar, whose descendants ruled over Goalpara and contingauaus portions of Kamrup-Koch [7]

गोवालपरीया उपभाषा के अंतर्गत विद्वानों ने कुछ क्षेत्रीय उपभागों की उपस्थिति के बारे में उल्लेख किया है। पश्चिमी गोवालपरीया और पूर्वी गोवालपरी डॉ॰ उपेंद्रनाथ गोस्वामी जी गोवालपरीया उपभाषा कोया नाम से दो प्रधान उपभागों में विभाजित किया है। डॉ॰ रमेश पाठक जी ने गोवालपरीया उपभाषा को ब्रह्मपुत्र नद के आधार पर उत्तर तट और दक्षिणी तट दो भागों में बांटा है तथा इन दो भागों के अंतर्गत भी और दोमें दो क्षेत्रीय उपभागों-उत्तर तट के -विभाजित किया है। जैसे अंतर्गत पूर्वी भाग बासुगाँव), बोंगाईगाँव, बिजनीऔर पश्चिमी भाग (गौरीपुर (, धुबुरी, सत्रशालतथा दक्षिणी तट के अंतर्गत भी पूर्वी भाग (दूधनोई (, लक्षीपूर) और पश्चिमी भाग दक्षिण शालमारा), मानकाछारआदि में वर्गीकृत किया है। ([8] *डॉ॰ उपेन राभा हाकाचाम* जी के पुस्तक '*असमिया आरू असमर भाषा-उपभाषा*' में गोवालपरीया उपभाषा के अन्य कुछ क्षेत्रीय उपभागों का नाम भी उल्लेख किया है, जैसेघुल्लीया -, चरुवा, झारुवा, नामनिया, बाउसीया, हाबराघाटीया, बारहाजारीया आदि। कोईकोई विद्वानों ने गोवालपरीया उपभाषा को -क्षेत्रीय विभाजन के विपरीत भाषासमुदायों के आधार पर बांटना उचित माना है।-

-गोवालपरीया उपभाषा में अंतर्निहित कुछ भाषित विशेषताएँ निम्न प्रकार देखा जा सकता है

क) गोवालपरीया उपभाषा में शाब्दिक स्वराघात (शब्द के उच्चारण के समय किसी व्यंजन या स्वर पर अधिक ज़ोर देना) शब्दों के आदि स्थान में होता है। जबकि मानक असमिया भाषा में स्वराघात उपांत्य वर्ण में होते हैं। जैसे- मानक असमिया भाषा के '*चेपेटा*' (सपाट, चपटा), '*कोमोरा*' (ककड़ी) आदि का उच्चारण गोवालपरीया उपभाषा में क्रमशः '*चेप्टा*', '*कुम्रा*' होते हैं।

ख) गोवालपरीया उपभाषा के शब्दों में दो 'आ' ध्वनि एक साथ उच्चारण हो सकते हैं, अर्थात 'ओ' के स्थान पर 'आ' हो जाता है। जैसे- मानक असमिया के '*कोना*' (काना), '*कोला*' (काला) आदि शब्द गोवालपरीया में '*काना*', '*काला*' आदि जैसे उच्चरित होते हैं।

ग) गोवालपरीया उपभाषा में शब्दों के आदि वर्ण में स्थित 'औ' ध्वनि 'ऐ' ध्वनि में परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे- *गौरव > गैरव, सौरभ > सैरभ* आदि।

घ) दो वर्णयुक्त शब्दों के अंत में 'आ' ध्वनि मौजूद होने से गोवालपरीया उपभाषा में शब्दों के उपांत्य स्थान में 'इ' या 'य' ध्वनि का योग देखा जाता है, जैसे- '*बेया*' (बुरा) > '*बेइया/बेयया*'।

ङ) किसी शब्दों के आदि व्यंजन में 'र' ध्वनि संयुक्त होने से गोवालपरीया उपभाषा में प्रायः वह शब्द सरलीकृत होकर उच्चरित होते हैं, जैसे- '*प्रथम*' > '*परथम*', '*प्रकाश*' > '*परकाश*' आदि।

च) मानक असमिया भाषा में व्यवहृत स्थान वाचक सर्वनाम जैसे- '*इयात*', '*तात*', '*क'त*' (यहाँ, वहाँ, कहाँ) आदि रूपों का गोवालपरीया उपभाषा में क्रमशः '*एटि*', '*उति*', '*कुटि*' आदि उच्चरित होते हैं।

मानक असमिया भाषा के बहुवचन वाचक प्रत्यय गोवालपरीया उपभाषा में सम्पूर्ण पृथक रूप में प्रयोग होते हैं, जैसे -*गुला/गुले -'मानसीगुला'* मानक) असमिया में -मानुहबोर हिंदी ;अर्थ- मनुष्यों(, *हर -घर/ चेंगराहर'*मानक) असमिया ल'राहँत; हिंदी अर्थ लड़कोंआदि। (

कामरूपी उपभाषा एवं गोवालपरीया उपभाषा में अंतर:

असम राज्य की प्रधान भाषा'असमिया' विभिन्न उपभाषा, स्थानीय भाषा एवं जनजातीय भाषाओं के समूह है। तथा कामरूपी एवं गोवालपरीय उपभाषा असमिया भाषा के अंतर्गत आनेवाले प्रधान एवं उल्लेखनीय उपभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। ब्रह्मपुत्र नद के दक्षिणी तट पर स्थित 'डिमरिया' अंचल से 'बोको' अंचल तक एवं उत्तरी तट पर 'बरपेटा' से 'दरंग' जिला के सीमा तक कामरूपी उपभाषा फैली हुई है। इसी तरह गोवालपरीया उपभाषा निम्न असम के गोवालपारा, धुबुरी, कोकराझार, बोंगाइगाँव, चिरांग आदि जिलाओं में बोली जाती है। निम्न असम में प्रचलित इन दो उपभाषाओं में यथेष्ट प्रभेद दृष्टिगोचर होते हैं। यह अंतर विदेशी आक्रमण के प्रभाव, धर्म धारा, निवास स्थान, सामाजिक वर्ग विभाजन, आर्थिक स्थिति, भौगोलिक स्थिति, राजनैतिक व्यवस्था आदि विभिन्न कारकों के प्रभाव से उत्पन्न हुआ है। प्रस्तुत आलेख में कामरूपी एवं गोवालपरीया उपभाषा के बीच पाए जानेवाले ध्वनितात्विक-, रूप-तात्विक आदि पार्थक्य को विश्लेषण किया गया है।-तात्विक और शब्द

ध्वनि:तात्विक विश्लेषण-

1. कामरूपी उपभाषा में उच्चरित विशिष्ट स्वर-ध्वनि की संख्या आठ (8) हैं- /अ/, /अ'/, /आ/, /इ/, /उ/, /ए/, /ए'/ और /ओ/। अंचल विशेष में कामरूपी उपभाषा के /अ'/ ध्वनि लुप्त होते हैं। तथा गोवालपरीया उपभाषा में उच्चरित स्वर-ध्वनियों की संख्या सात (7) हैं- /अ/, /आ/, /इ/, /उ/, /ए/, /ए'/ और /ओ/। [9]
2. कामरूपी उपभाषा में प्रयुक्त विशिष्ट व्यंजन-ध्वनियों की संख्या तेईस (23) हैं- /क/, /ख/, /ग/, /घ/, /ङ/, /च/, /ज/, /त/, /थ/, /द/, /ध/, /न/, /प/, /फ/, /ब/, /भ/, /म/, /र/, /ल/, /व/, /स/, /ह/ और /य/। ध्यान देना आवश्यक है कि कामरूपी उपभाषिक क्षेत्र विशेष में /झ/ ध्वनि का प्रयोग भी देखा जाता है। तथा गोवालपरीया उपभाषा में प्रयुक्त विशिष्ट व्यंजन ध्वनि की संख्या उनतीस (29) हैं- /क/, /ख/, /ग/, /घ/, /ङ/, /च/, /छ/, /ज/, /झ/, /ट/, /ठ/, /ड/, /ढ/, /त/, /थ/, /द/, /ध/, /न/, /प/, /फ/, /ब/, /भ/, /म/, /र/, /ल/, /श/, /स/, /ह/ और /ड़/। रेखांकन किया गया ध्वनि दोनों उपभाषा में परस्पर पृथक है।
3. कामरूपी उपभाषा में 'च' और 'झ' ध्वनि मानक असमिया भाषा की तरह क्रमशः दंत्य ध्वनि /स/ और अल्पप्राण ध्वनि /ज/ के रूप में उच्चरित होते हैं, परंतु गोवालपरीया उपभाषा में /च/ तालव्य ध्वनि के रूप में और /झ/ महाप्राण ध्वनि के रूप में उच्चरित होते हैं।
4. कामरूपी उपभाषा में मूर्धन्य ध्वनि और दंत्य ध्वनि के उच्चारण में कोई अंतर परिलक्षित नहीं होता है। जैसे- 'ट' और 'त' दोनों का उच्चारण दंत्य ही होता है, परंतु गोवालपरीया उपभाषा में 'ट' और 'त' वर्ण क्रमशः मूर्धन्य ध्वनि और दंत्य ध्वनि के रूप में उच्चरित होते हैं।
5. मानक असमिया भाषा के अल्पप्राण ध्वनियाँ कामरूपी एवं गोवालपरीया दोनों उपभाषा में महाप्राण ध्वनि के रूप में उच्चरित होते हैं। परंतु गोवालपरीया उपभाषा में महाप्राण ध्वनि कभी-कभी अल्पप्राण ध्वनि के रूप में प्रयोग होता है। जैसे- 'कथा > कता' (बात), 'बाधा > बादा' (रोकना)।

रूप:तात्विक विश्लेषण-

1. शब्दों में बहुवचन वाचक प्रत्यय के प्रयोग के क्षेत्र में कामरूपी और गोवालपरीया उपभाषा के बीच अंतर देखा गया है। बहुवचन का अर्थ स्पष्ट करने के लिए दोनों उपभाषा में मानक असमिया भाषा से कुछ अलग-अलग प्रत्यय का प्रयोग देखा जाता है। जैसे-

   कामरूपी उपभाषा में /-से/, /-माखा/, /-मोखा/, /-सपा/, /-सपरा/, /-हपा/, /-हपरा/, /-खबा/, /-गिला/, /-गिलाक/, /-गिलान/, /-हात/, /-हाना/, /-हामला/, /-हामरा/, /-हुन/, /-आहुन/, /-ठेर/, आदि बहुवचन वाचक प्रत्ययों का योग किया जाता है। जैसे- गरुगिला, सिगिलाक, मामा आहुन, सखीहाना, छागलमाखा, फूलसपा, छोलिहात, कापूर सपरा, मामाठेर, आईसकाल आदि।

   गोवालपरीया उपभाषा में /-गुला/, /-गुले/, /-गुलान/, /-गिलान/, /-गिला/, /-गेला/, /-रा/, /-घर/, /-हर/, /-हला/, /-माखा/, /-गिलाक/ आदि बहुवचन वाचक प्रत्ययों का योग किया जाता है। जैसे- मानशिगुलान, चेंगरागुला, माँगुलान, गूरुगुला, मामाहर, घोरागिलान, आमरा, तुमरा, छागोलगुला, मानशिमाखा, गूरुगिलाक आदि।

ध्यान देना आवश्यक है कि कामरूपी उपभाषा में प्रयोग /-से/, /-सपा/, /-आहुन/, /-आहा/, /-हाना/, /-हामरा/, /-हात/ आदि प्रत्यय का प्रयोग गोवालपरीया उपभाषा में नहीं है। इसी तरह गोवालपरीया उपभाषा में प्रयोग /-रा/, /-घर/, /-हर/, /-हला/ आदि प्रत्यय कामरूपी उपभाषा में नहीं है।

2. कामरूपी और गोवालपरीया उपभाषा में प्रयुक्त निर्दिष्ट वाचक प्रत्ययों के रूप में भी अंतर दृष्टिगोचर होते हैं। निम्नलिखित सारणी के माध्यम से यह स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है-

कामरूपी उपभाषा	**गोवालपरीया उपभाषा**
-टु: मानहुटु	-टा: मानुशटा
-थुक/-थक: तामुलथुक/थक	-बादा: तामुलबादा
-खिनि: माचखिनि	-कोना: एइकोना
	-गुटिक: मासगुटिक
	-मुटा: चाउलमुटा
-मुठा: चाउलमुठा	चाका: आमचाका
-चाक्ला: आमचाक्ला	-टुका: पानीटुका
-टुपा: पानीटुपा	-चिर: शेमाचिर
-दखर/-दखरा: तियाहदखर/दखरा	-हाता: कलहाता
-आखा: कलआखा	

3. गोवालपरीया उपभाषा में पुल्लिंग वाचक शब्द और स्त्रीलिंग वाचक शब्द का अर्थ प्रकाश कराने हेतु दो-दो बार लिंग का प्रयोग किया हुआ देखा जाता है। जैसे- बुरार बेटा, बुरीर बेटी आदि। परंतु कामरूपी उपभाषा में यह विशेषता विद्यमान नहीं है।
4. कामरूपी उपभाषा में वचन के अनुसार क्रिया रूपों का कोई परिवर्तन नहीं होते हैं। किंतु गोवालपरीया उपभाषा में वचन के अनुसार क्रिया रूपों का परिवर्तन होता हुआ देखा जाता है। जैसे- मुइ खांग (मैं खाता हूँ), आम्रा खाइ (हम खाते हैं) आदि।
5. कामरूपी और गोवालपरीया उपभाषा में प्रयुक्त सर्वनामों के रूपों में भी कुछ अंतर देखा जाता है। जैसे-

पुरुष	**कामरूपी**		**गोवालपरीया**	
	एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
	मइ		मुइ	
प्रथम पुरुष	आमि		आमरा	
द्वितीय पुरुष	तइ		तुइ/तोमरा	
	तुहून/तहाँत/तंहते		तूम्रा/तुम्रागुला	
	तुमि	तुमि		
	आहुन/तुहना			
	आप्नि/आपुनि	आपोनालोक/सकल		
तृतीय पुरुष	सि (पुं)			
	ताहात		उनि/उआइ	
			उम्रा/उमिरा/उनारा	

	ताइ (स्त्री) ताइहात/तुहून तेउ तेहात/ताँह्ना	

6. कामरूपी एवं गोवालपरीया उपभाषा में प्रयोग क्रिया विशेषणों के अलग-अलग रूप देखा गया है। जैसे-

	कामरूपी	गोवालपरीया
कालवाचक: एतिया (अब) तेतिया (तब) केतिया (कब) स्थानवाचक: त’लै (वहाँ) ज’लै (जहाँ) क’लै (कहाँ) परिमाण: इमान (इतना) जिमान (जितना) सिमान (उतना) किमान (कितना) लक्षणवाचक: एनेकै (ऐसे) तेनेकै (वैसे) जेनेकै (जैसे) केनेकै (कैसे)	इत्ते/इता/इथान तेइते/तेइता/तेथान केइता/केथान तात/सहाय/सेफ्ले जोत/जहाय कोक/कोत/कँहाय इमान/ए’नाम जिमान/जे’नाम तिमान/ते’नाम/सिमान किमान/के’नाम ए’नाइके/एंके सेनाइ/सेंके/तेंके जे’नाइके/जेंके के’नाइके/केंके/ केनाइकोरि/केंकोरि	ए’खन/ए’ला तखन/तेला/ओला/अ’इ समय कखन/कुनबेला/कुनसमय तात/ओटि/ओइठे/अ’यदिके ज’त/जेति/जिदिके कुटि/क’त/कुनदिके इमान/ए’त्तु जिमान/ज’त्तु तिमान/अ’त्तु किमान/क’त्तु एनका/एंका/एमन/एमनकोरि तेन्का/तेंका/अंका/शे’मन जे’न्का/जेंका/जे’मन/जे’मनकोरि केन्का/केंका/के’मन/के’मनकोरि

शब्द:तात्विक विश्लेषण-

कामरूपी एवं गोवालपरीया दोनों उपभाषा में उपर्युक्त प्रभेदों के उपरांत भी वाक्य में शब्द चयन-प्रक्रिया, बोलने का लहज़ा आदि के क्षेत्र में अंतर परिलक्षित होते हैं। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित शब्दों के सारणी को देख सकते हैं-

मानक असमिया (हिंदी)	**कामरूपी उपभाषा**	**गोवालपरीया उपभाषा**
जौँवाइ (दामाद)	जँवे/जङे/जाउङे	जामाइ
भनी (बहन)	बैनी/बनी	बैन
म'ह (भैंस)	मुइह/मुह	भैश
छागली (बकरी)	छागल/छागाल	सागल
काउरी (कौआ)	काउर	काओवा
पइताचुरा (तिलचट्टा)	तेलपका/तेलभौका	तेलुम
मधुरीआम (अमरूद)	सोइफ्राम/स'फ्रेम	शुप्री/शुपारि
अमिता (पपीता)	मइद्फ़ल/मप्फेल	मोधूफल/तोरमूल
पुवा (सुबह)	पुवा	बिहान/शकाल
नियर (कोहरा/कुहासा)	नियार	शित
बरषुण (बारिश)	बइरहान/ब'हेन	झोरि/पानी
आलही (मेहमान)	कुर्मा/अतिथि	शागाइ
चारि (चार)	चारि	चाइर
ल'रा (लड़का)	आपा	चेंगरा
छोवाली (लड़की)	आपि	चेंगरी आदि।

निष्कर्ष : उपभाषा; भाषा का एक अभिन्न अंग है, जो मूल भाषा के परिनिष्ठित रूप से ध्वनि, वाक्य-संरचना, अर्थ, शब्द-समूह, उच्चारण आदि की दृष्टि से पृथक होते हैं। यह निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि विभिन्न कारणों के प्रभाव से एक निर्दिष्ट क्षेत्र में उपभाषा की सृष्टि होती है। असमिया भाषा के उपभाषाओं का निर्माण भी सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक कारणों के प्रभाव से हुआ है। जर्ज ग्रीयर्सन से लेकर डॉ॰ दीपांकर मरल आदि तक के भाषाविदों ने असमिया भाषा के उपभाषाओं के संबंध में अध्ययन-विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में डॉ॰ उपेंद्रनाथ गोस्वामी जी का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने सर्वप्रथम असमिया भाषा के उपभाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन को गति देने का महत्वपूर्ण कार्य संपन्न किया।

निम्न-असम (नामनि-असम) में प्रचलित कामरूपी उपभाषा एवं गोवालपरीया उपभाषा के बीच पाए जानेवाले उपर्युक्त प्रभेदों के कारण ही यहाँ के भाषिक-विशेषता बहुत ख़ास हो जाती है। दोनों उपभाषाएँ मानक असमिया भाषा से यथेष्ट दूरी पर जा बसे हैं। मानक असमिया भाषा बोलने और समझने वाले व्यक्ति इन दो उपभाषाओं को अति सहज ही समझ पाना उनके लिए एक

कठिन कार्य है। एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन दोनों उपभाषाओं में लोककथाएँ एवं लोकगीत आदि की प्रधानता अधिक है। परंतु दोनों ही उपभाषा द्वारा लेखन परंपरा में मानक असमिया भाषा को ही ग्रहण किया है।

संदर्भ सूची-

[1].बिभा भराली, "कामरूपी उपभाषा : एक अध्ययन" पूर्वायन प्रकाशन (2022) पृष्ठ संख्या : 15

[2]. बिभा भराली, "कामरूपी उपभाषा : एक अध्ययन" पूर्वायन प्रकाशन (2022) पृष्ठ संख्या : 15

[3]. डॉ॰ रमेश पाठक, "उपभाषा-विज्ञानर भूमिका" अशोक बूक स्टॉल प्रकाशन (2019) पृष्ठ संख्या : 110

[4]. बिभा भराली, "कामरूपी उपभाषा : एक अध्ययन" पूर्वायन प्रकाशन (2022) पृष्ठ संख्या : 19

[5]. डॉ॰ पराग कुमार भट्टाचार्य (संपदना), "उपभाषा विज्ञान आरू असमिया उपभाषा" कृष्णकांत संदिकै मुक्त विश्वविद्यालय प्रकाशन (2018) पृष्ठ संख्या : 38, 39

[6]. डॉ॰ रमेश पाठक, "उपभाषा-विज्ञानर भूमिका" अशोक बूक स्टॉल प्रकाशन (2019) पृष्ठ संख्या : 134

[7]. डॉ॰ रमेश पाठक, "उपभाषा-विज्ञानर भूमिका" अशोक बूक स्टॉल प्रकाशन (2019) पृष्ठ संख्या : 134, 135

[8]. डॉ॰ रमेश पाठक, "उपभाषा-विज्ञानर भूमिका" अशोक बूक स्टॉल प्रकाशन (2019) पृष्ठ संख्या : 137

[9]. डॉ॰ उपेन राभा हाकाचाम, "असमिया आरू असमर भाषा उपभाषा" ज्योति प्रकाशन (2020) पृष्ठ संख्या : 450

संदर्भ ग्रंथसूची-

1. कलिता, निपम एवं बोरा भृगुतम: 2021, **"भाषाविज्ञान आरू असमिया भाषा "** पूर्वायण प्रकाशन-पानबाज़ार गुवाहाटी।
2. गोस्वामी, डॉ॰ श्रीगोलकचंद्र: 2015, **"असमिया व्याकरणर मौलिक विचार"** वीणा लाइब्ररी प्रकाशन, गुवाहाटी।
3. गोस्वामी, उपेंद्रनाथ: 2012, **"असमिया भाषा आरू उपभाषा"** मणि माणिक प्रकाशन, गुवाहाटी।
4. पाठक, डॉ॰ रमेश: 2019, **"उपभाषा विज्ञानर भूमिका"** अशोक बूक स्टॉल प्रकाशन, गुवाहाटी।
5. राभा हकाचाम, डॉ॰ उपेन: 2020, **"असमिया आरू असमर भाषा-उपभाषा"** ज्योति प्रकाशन-पानबाज़ार, गुवाहाटी।
6. दास, डॉ॰ विश्वजित एवं बसुमतारी, डॉ॰ फुकन चंद्र: 2022, **"असमिया आरू असमर भाषा"** आँक-बाँक प्रकाशन, पानबाज़ार, गुवाहाटी।
7. पाटगिरि, दीप्ति फुकन: 2015, **"असमिया भाषार उपभाषा"** गौहाटी विश्वविद्यालय प्रकाशन, गुवाहाटी।
8. भराली, बिभा: 2022, **"कामरूपी उपभाषा : एटि अध्ययन"** पूर्वायण प्रकाशन-पानबाज़ार गुवाहाटी।

9. भट्टाचार्य, डॉ॰ पराग कुमार (संपदना): 2018, “**उपभाषा विज्ञान आरू असमिया उपभाषा**” कृष्णकांत संदिकै मुक्त विश्वविद्यालय प्रकाशन।
10. चौधरी, तेजपाल: 2009, “**भाषा और भाषाविज्ञान**”, विकास प्रकाशन कानपुर।

पीटर पॉल एक्का का उपन्यास ‘पलास के फूल’ : आदिवासी समाज में विस्थापन का दस्तावेज

पूजा पॉल

पी.एच. डी शोधार्थी, हिन्दी विभाग राजीव गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 24 – 28 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

शोध-सार

हिन्दी आदिवासी साहित्य में 'पीटर पॉल एक्का' का नाम बहुत ही चर्चित माना जाता है। 'आदिवासी' यानी देश के 'मूल निवासी' को कहा जाता है। दरअसल आदिवासी समाज को 'हाशिए का समाज' के खांचे में रखा जाता है। आजादी के बाद आदिवासियों की अवस्था ओर अधिक दयनीय होने लगी। विकास की लहर ने आदिवासियों के जमीन को ही बहाकर ले गया। जमीन सरकार के कब्जे में आते ही आदिवासियों के जीवन में 'विस्थापन' नामक समस्या ने आ घेरा। इसी ज्वलंत समस्या को मद्देनजर रखते हुए आदिवासी उपन्यासकार पीटर पॉल एक्का ने बहुत ही प्रभावी ढंग से अपनी लेखनी चलाई है। उपन्यासों के माध्यम से उपन्यासकार ने सरकारी योजनाओं के सफलता के पीछे की सच्चाई, आदिवासियों के साथ हो रहे अन्याय और समाज में फैले भ्रष्टाचार के मुखोटे का पर्दाफाश करने में सफल हुए है। पीटर पॉल एक्का के कुल चार उपन्यास है। उनके द्वारा रचित चारों उपन्यास आदिवासी जीवन पर केन्द्रित है। उनमें से 'पलास के फुल' उपन्यास बहुत महत्वपूर्ण और यथार्थ जीवन से सम्बंधित है। इस उपन्यास में 'विस्थापन' की त्रासदी को झेलते आदिवासियों का संघर्षमय जीवन चित्रित किया है।
बीज शब्द: आदिवासी, विस्थापन, पीटर पॉल एक्का, देश, उपन्यास, समस्या इत्यादि

मूल– आलेख: हमारे देश में आर्यों का आगमन होते ही उन लोगों ने आदिवासियों को उपेक्षित, प्रताड़ित और अधिकारों से वंचित करने लगे। धीरे-धीरे आर्यों ने अपना वर्चस्व फैलाने के लिए आदिवासियों को हाशिए का समाज का दर्जा देने लगे। काल-क्रम अनुसार बाहर से आये लोगों ने आदिवासी समाज को अलग-थलग नजरियों से देखने लगे। गुलामी का जंजीर तोड़ भारत देश को आजाद कराने में आदिवासियों ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है। स्वाधीन होने के बाद देश का शासनतंत्र हमारे नेताओं के हाथ में आया तो मूल निवासियों को आश्वासन दिया गया कि उन्हें भी अपना अधिकार जरुर मिलेगा। राजनीतिक सत्ता में खड़े नेताओं का मूल लक्ष्य यहीं था कि सबसे पहले हाशिए के समाज को विकास एवं उन्नतिशील बनाया जाए। उस समय देश-विदेश के चारों तरफ आधुनीकीकरण, औद्योगिकीकरण, भू-मंडलीकरण, बाजारीकरण और उदारीकरण का दौर चल रहा था। हमारा नया स्वाधीन देश ने भी समय के बहाव के साथ चलने में ही उचित समझा। हमारे देश को विकासशील और उन्नतशील बनाने के लिए आदिवासियों की जमीन का इस्तमाल होना शुरू किया गया। आदिवासियों ने देश की भलाई के लिए अपना सर्वस्व लुटाने लगे, लेकिन बदले में राजनीतिक सत्ताधारियों ने आदिवासियों को अपना हक नहीं दिया। जिस कारण आदिवासियों को विस्थापन का दर्द झेलना पर रहा है। इसी सन्दर्भ में डॉ. संजय कुमार लक्की का कहना है कि "आजाद भारत के साठ साल कई उम्मीदों के टूटने और कई प्रतीक्षाओं के निष्फल होने के साल हैं। इन्हीं वर्षो में सत्ता और शक्ति के केन्द्रों से जुड़ा एक छोटा – सा समूह इस बड़ी आबादी की सारी जरूरतों को रौंदते हुए और उसे हर स्तर पर विस्थापित करते हुए, अपने लिए एक हरा-भरा मरुद्यान बनाने के छल में सफल हुआ है" [1] हमारा देश जितना ही विकास के सीढ़ी में चढ़ता जा रहा, आदिवासी समाज में 'विस्थापन' की समस्या बढ़ने लगी है। विस्थापन की समस्या ने आदिवासियों के जीवन को और भी अधिक कठीन और संघर्षमय बना दिया है।

पीटर पॉल एक्का द्वारा रचित 'पलास के फुल' उपन्यास में आदिवासियों के आन्तरिक और बाह्य जीवन को प्रतिफलित किया गया है। यह उपन्यास विस्थापन समस्या पर केन्द्रित है। उपन्यासकार ने आदिवासियों के जीवन में विस्थापन नामक समस्या के सभी पहलुओं को रेखांकित किया है। विस्थापन का दंश झेलते आदिवासियों की दुःख और त्रासदीपूर्ण जीवन का पीड़ादायक वर्णन किया गया। 'गंगा सहाय मीणा' का कहना है कि "तमाम विकास परियोजनाओं से आदिवासियों को भूख और विस्थापन के अलावा कुछ नहीं मिला" [2] इसी कटु सत्य का परिपुष्टि करती है पीटर पॉल एक्का की 'पलास के फुल' उपन्यास। आदिवासी विस्थापित होते ही रोजगार की समस्या उभर कर आती हैं। भूख की आग में आदिवासियों का जीवन सुलझ जाता है। गाँव भर में उथल-पुथल तभी शुरू हो गयी जब सरकार ने सड़क-पुल बनाने की परियोजना लागू की। आदिवासियों का जीवन-प्रणाली में बहुत अधिक बदलाव की परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। परियोजनाओं का काम शुरू होते ही प्राकृतिक संपदाएं क्षतिग्रस्त होती है। सड़क बनाने के लिए बहुत अधिक पेड़ काटना परता है। सरकार अब मालिक बनकर जंगलों के जंगल काट डालते है। जंगल का असली संरक्षक आदिवासियों का वनस्पति पर रहे अधिकार को सरकार छींन लेते है। जंगल से जीविकापार्जन का साधन जुटानेवाले आदिवासियों का रोजगार बंध हो जाता है। साथ ही खेत-खलिहान का जमीन भी सड़क बनाने के काम में सरकार कब्जा कर लेते है। खेती-बारी कर रोजीरोटी कमानेवाला साधन भी आदिवासियों के पास नहीं रहता। अब ले-देकर आदिवासियों के पास सड़क बनाने के काम में मजदूरी करना ही विकल्प रह जाता है। इस कार्य में भी उन पर शोषण किया जाता है। मशीनी गति से काम निकलवाना और मजदूरी में रुपया कम देना तो स्वाभाविक हो गया है। अपना पेट पालने के लिए आदिवासी मजदूरी कर जीवन-यापन करते है।

"सरकारी योजनाएँ तो ज्यादेतर कागजों में ही सिमट कर रह जाती हैं। दिखावे के खर्च होते रहेंगे। इन आदिवासियों का भाग्य वहीं का वहीं रह जायेगा। बेहिसाब खदान, कोलियरी खुलेगी। नदियों में पुल बनेंगे, बाँध बनेंगे। बिजली तैयार होगी, नहरें खुलेंगी। वर्षों की मेहनत से बनी-बनायी जमीन डूब जायेगी। मुआवजे के नाम दिखावे की रकम मिलेगी। घर-बार छोड़ना होगा। घर के आदमी विस्थापित कर दिये जायेंगे। दूर के इलाके से आये लोगों का राज्य चलेगा। स्थानीय आदिवासी चाय बगानों, ईंट-भट्ठों की राह लेंगे" [3] सरकार आदिवासियों को जमीन के बदले जो मुआवजा देते है, वह बहुत ही नगण्य है। वह पैसा कब, कैसे और कहाँ खर्च हो जाता है आदिवासियों को पता भी नहीं चलता। अचानक से आदिवासियों का जीवन मालिक से गुलाम की जिन्दगी में परिवर्तित हो जाता है। दरअसल सरकार आदिवासियों से जमीन छींनकर एक तरह से ताउम्र पंगु बना देते है। सरकार ने आदिवासियों से जमीन लेकर उनकी दुनिया ही उजाड़कर रख देता है। अधिकत्तर योजनाओं में जमीन दे देने के बाद मिलनेवाली मुआवजा भी आदिवासियों को नसीब नहीं होता। सरकारी कागजात में लिखा होता है कि आदिवासियों को अपना जमीन देने के बदले मुआवजा मिल चुका है, लेकिन असली धरातल में आकर देखा जाए तो जमीन के बदले एक फूटी-कोड़ी भी नहीं मिलती। उपन्यासकार ने सरकारी कार्यकलाप में चल रहे धोकाधरी और भ्रष्टाचार, आदिवासियों के साथ हो रहे अन्याय पर पाठकों का ध्यान

केन्द्रीत किया है। इस प्रकार सरकारी योजनाएं आदिवासी गाँव को तहस-नहस कर देता है। बेघर होकर आदिवासी भटकाव की जिन्दगी गुजारते है।

सरकार के झुटी आश्वासन पर विश्वास कर गाववासी ठगा हुआ महसूस करते है। दरअसल इस योजना को पुरी करने के लिए आदिवासियों को अपना जमीन दे देना परता है। प्रकृति पूजक आदिवासियों का जमीन से जुड़ा हुआ रिश्ता टूट जाता है। जिस जमीन के जरिए आदिवासी अपने पूर्वजों से भावनात्मक स्तर से जुड़े हुए सम्बन्ध भी लुप्तप्राय होने लगती है। इस सन्दर्भ में 'प्रमोद मीणा' कहते है कि "सवाल सिर्फ जमीन का नहीं है। इस जमीन के साथ आदिवासी समाज की अर्थव्यवस्था, समाज-व्यवस्था, धार्मिक-सांस्कृतिक मान्यताएँ और पूर्वजों की यादें जुड़ी हैं"[4] जमीन से जुड़े रहने का मतलब होता है कि अपने जड़ से जुड़े रहना, परन्तु सरकारी योजनाएं आदिवासियों के जड़ (जमीन) से ही काट फेंकता है। आदिवासी एक जगह से दूसरें जगह में विस्थापित होते ही अपनी जो परम्परागत विशेषताएँ धुमील पर जाती है। अपना सांस्कृतिक उत्सवों को पालन करने के लिए पहले जैसा परिवेश और संगी-साथी का भी अभाव महसूस करता है। विस्थापित हुए आदिवासी अपने परिवार, नाते-रिश्तों और अपना आदिवासी समाज से बिछड़ जाते है। विस्थापित हुए आदिवासी कभी-कभी अपना आदिवासी धर्म को भी भूल जाते है और अन्य धर्म में परिवर्तित हो जाते है। सरकारी योजनाएं आदिवासियों को सम्पूर्ण रूप से प्रभावित करती है। इन योजनाओं का नकरात्मक प्रभाव का शिकार आदिवासी समुदाय ही होते हुए देखा जाता है। 'पलास के फुल' उपन्यास में स्पष्ट रूप में चित्रित किया गया है।

विस्थापन के कारण जन्मे अन्य समस्याओं पर भी दृष्टि डाली गयी है। उनमें से प्रमुख है बेरोजगारी की समस्या। इस समस्या के सन्दर्भ में 'आनंद कुमार पटेल' कहते है कि "विस्थापन के साथ ही आदिवासियों के जीविकोपार्जन की समस्या शुरू हो जाती है, जिससे आदिवासी समाज स्थाई रूप में न रहकर घुमंतू जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाता है। एक्का के उपन्यास, आदिवासी समाज की समस्या, दुःख-पीड़ा की आक्रोशपूर्ण अभिव्यक्ति हैं" [5] आदिवासियों के रोजगार का प्रमुख साधन खेत और जंगल होता है। आदिवासी बहुत परिश्रम कर फसल उगाते है और उसी से अपना जीविका चलाते है। साथ ही जंगल से फल-मूल, सब्जी, जड़ीबुटी, लकड़ी इत्यादि बटोरकर बजार में बेचकर आदिवासी अपना जीविका चलाते है। यह दोनों ही साधन सरकार ने बंध करवा दिया। बेरोजगारी की समस्या के साथ-साथ आदिवासियों का जीवन आर्थिक तंगी ने ओर भी अधिक दयनीय बना दिया। आर्थिक कमजोरी ने आदिवासियों को हाथ फैलाने के लिए मजबूर कर दिया। मजबूरी में आकर आदिवासी ऋण ग्रस्त जीवन जीवन जीता है। ऋण से दबकर रहनेवाले आदिवासियों का शोषण जमींदार किया करते है। कर्ज चुकाने के लिए आदिवासियों के पास बचा हुआ सबकुछ जमींदार को सौंप देते है। असल में ऋण के नाम पर आदिवासियों को ठगा जाता है। आदिवासियों का जीवन बहुत कठिनाई और त्रासदी से गुजरती है।

विस्थापन के कारण आदिवासियों के जमीन पर वर्षों से चले आ रहे आदिवासियों की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक गतिविधियाँ बिछीन्न हो जाती है। जमीन से हाथ धोते ही आदिवासियों के जीवन-प्रणाली का

साधन नहीं रहा। अपना प्राणस्वरूप जल, जंगल और जमीन पर आदिवासियों का अधिकार सरकार ने छीन लिया। अब मजदूरी करने के अलावा कोई रोजगार का साधन नहीं बचा। इसलिए सलोमी कहती है कि "आज हम यहाँ हैं, कल कहीं और होंगे। जंगल के जंगल, पहाड़-घाटियाँ जाने कहाँ-कहाँ भटकना होता है। सब तो भटकते ही जा रहे हैं। यहाँ से हजारों मील दूर चाय के बगानों, ईंट-भट्ठों का स्वप्न कौन देखता है वहाँ भी दबाये जायेंगे, निचोड़े जायेंगे। पर शायद दो जून की रोटी जुट जायेगीीन। यही हमारा धर्म हो गया है, भाग्य बन गया है" [6] भूख की आग को मिटाने के लिए आदिवासियों को इधर-उधर भटकते हुए जीवन व्यतीत करना परता है। अपने गाँव में रोजगार का साधन न मिलने के कारण दूसरें गाँव में रोजगार की तलाश में जाते है। फिर कुछ दिन वहां मजदूरी का काम कर पेट भर लेते है। दूसरी जगह पर भी जब बेरोजगारी का अकाल परता है तो तीसरी जगह विस्थापित हो जाते है। आदिवासियों का जीवन अंतहीन भटकाव का दौर निरंतर चलते रहते है। आदिवासी चाहे जहां पर चला जाए हर जगह उन पर शोषण-प्रताड़ित और अजनबी का जीवन जीना परता है। यह निरंतर चलते संघर्षमय जीवन से थक हार कर अपने भाग्य पर ही दोष देकर मौन में जीवन जीते है। उपन्यास के अंत में देखते है कि सरकारी योजना के तहत सड़क-पूल बनकर तैयार हो चूका है। उसी सड़क और पूल से आदिवासी बेरोजगारी के अकाल से बचने के लिए विस्थापन का रास्ता ही चुन लेते है। आदिवासी बनाम विस्थापन की त्रासदी को उपन्यासकार ने बहुत ही यथार्थ रूप में रेखांकित किया है।

उपन्यास में स्पष्ट रूप में आदिवासियों पर चल रहे घिनौने षड़यंत्र का पर्दाफाश किया गया है। उपन्यासकार ने कटाक्ष रूप में, आदिवासियों के जीवन को अँधेरे के तरफ धकेल देने में राजनीतिक शासन पर बैठे सरकार को जिम्मेदार ठहराया है। इंजीनियर साहब आदिवासियों की दुर्दशा देख सोचता है कि "यह सब क्या उन भोले-भाले आदिवासियों के भले के लिए हो रहा है या एक अंतहीन भटकाव की शुरुआत है" [7] आदिवासियों का सरकार से जो उम्मीदें थी, वह सब कुछ खतम हो गया। आदिवासी पर शारीरिक, मानसिक और आर्थिक शोषण बढ़ता ही जा रहा है। सरकार ने आदिवासियों से अपना जल, जंगल और जमीन से अधिकार छींन लिया। इसके साथ ही आदिवासी समाज, संस्कृति, अस्मिता और अस्तित्व की पहचान भी गायब होने के कगार पर पहुँच चुका है। सरकार अगर आवश्यकता अनुसार विकास और आदिवासी जीवन के बीच संतुलन स्थापित कर पाते तो मूल निवासियों का जीवन तबाह होने से बच सकता है। सरकार प्रयोजनीयता के हिसाव से ही विकास करने का कार्य अपना लेते तो सब का साथ सब का विकास संभव हो पाएगा।

निष्कर्ष :_ 'पलास के फूल' उपन्यास आदिवासी समाज के विस्थापन की त्रासदी को बहुत ही विस्तृत एवं प्रभावी ढंग से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में सफल मान सकते है। असल में सरकारी योजनाएं आदिवासियों के जमीन पर ही पूर्णता प्राप्त करती है। गाँव में उपलब्ध होनेवाले सुविधाओं का लाभ आदिवासी नहीं उठा पाते। विकास का श्री गणेश तो गाँव में बढ़ियाँ से किया जाता है, लेकिन 'विस्थापन' की समस्या बढ़ने लगती है। जमीन से बेदखल होते ही अधिकत्तर आदिवासी विस्थापित हो जाते है। गाँव में रह गये आदिवासी सरकारी योजना में मजदूरी का काम कर अपना परिवार का पालन-पोषण कर लेते है। जब आदिवासी गाँव में

सरकारी योजनाओं का सफलतापूर्वक काम हो जाता है तो तब गाँव में फिर से बेरोजगारी का अकाल परता है। गाँव में बाकी बचे मजदुर आदिवासी दूसरी जगह काम के तलाश में विस्थापित हो जाते है। अंत में गाँव पूरा का पूरा खाली परा रहता है। गाववालों की यातायात के सुविधा के लिए बनाये गये सड़क-पुल बाहर से आये लोगों के लिए काम आते है। सरकारी कागजत में आदिवासियों के भलाई के लिए बनाया गया सड़क-पुल नाम से दर्ज किया रहेगा, लेकिन असल में यथार्थ के धरातल पर आकर देखा जाए तो सुविधा का भोग उठाते अन्य लोगों की जमघट दिखाई देंगी। सरकारी योजनाओं का खोखले और दिखावा के कार्य का खुलासा उपन्यासकार अपने उपन्यास के माध्यम से करते है। 'पलास के फुल' उपन्यास अपनी इस मौलिकता के कारण पाठकों में खूब चर्चित है। आदिवासी अपना जमीन और परिश्रम देकर के सड़क-पूल बनाएगा, परन्तु इसके बाद उपभोग न कर पाने की विडम्बना भी बहुत दुखद है। विस्थापन की समस्या पर केन्द्रित यह पीटर पॉल एक्का की उपन्यास बहुत ही प्रासंगिक साबित होती है।

संदर्भ सूची-

1.डॉ. रमेश चंद मीणा, आदिवासी विमर्श, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रकाशन, जयपुर, 2013, पृष्ठ संख्या 42

2.गंगा सहाय मीणा, आदिवासी चिंतन की भूमिका, अनन्य प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृष्ठ संख्या 26

3.पीटर पॉल एक्का, पलास के फूल उपन्यास, सत्य भारती प्रकाशन, रांची, 2012, पृष्ठ संख्या 58

4.अनुज लुगुन, आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृष्ठ संख्या 51

5.आनंद कुमार पटेल, आदिवासी संवेदना और पीटर पॉल एक्का के उपन्यास, सत्य भारती प्रकाशन, रांची, 2020, पृष्ठ संख्या 117

6. पीटर पॉल एक्का, पलास के फूल उपन्यास, सत्य भारती प्रकाशन, रांची, 2012, पृष्ठ संख्या 58

7.पीटर पॉल एक्का, पलास के फूल उपन्यास, सत्य भारती प्रकाशन, रांची, 2012, पृष्ठ संख्या 20

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि

मनीष तोमर

अतिथि प्राध्यापक, असम विश्वविद्यालय, सिलचर

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 28– 36 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

शोध-सार

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वाधीनता आंदेलन की उथल- पुथल से भरे उस दौर के लेखक थे जिस दौर में राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पटल पर बंग-भंग से लेकर, प्रथम विश्वयुद्ध, सोवियत समाजवादी क्रांति, जलियांवाला बाग जैसी घटनाएँ घट रही थीं और बहिष्कार, स्वदेशी, स्वराज, असहयोग, अहिंसात्मक और क्रांतिकारी संगठनों के माध्यम से अनेक राजनीतिक आंदोलन चल रहे थे। आचार्य शुक्ल की साहित्यिक चिन्ताओं का जन्म राष्ट्रीय आंदोलन की इसी उथल-पुथल के बीच हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन की जरूरतों से प्रेरित होकर उन्होनें गम्भीर साहित्यिक-वैचारिक लेखन किया। राष्ट्रीय आंदोलन ने साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में जो-जो प्रश्न खड़े किये, वे सभी उनके लेखन के केन्द्र में रहे। उस समय स्वाधीनता आंदोलन में राष्ट्रीय अस्मिता का प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण बना हुआ था। हमारी संस्कृति, साहित्य, राष्ट्र का विकास किस दिशा में होना चाहिए? परंपरा की दिशा में या आधुनिकता की? हम किसके आधार पर ज्यादा शक्तिशाली बनेंगे?- इस तरह के तमाम प्रश्न प्रबुद्ध बुद्धिजीवियों के लिए प्राथमिक महत्व रखते थे।

बीज शब्द: उपनिवेशवाद, आंदोलनकर्ता, उग्रता, विचारधारा , स्वदेशी आदि

मूल– आलेख: स्वाधीनता आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने फरवरी 1907 के 'हिन्दुस्तान रिव्यू', इलहाबाद में 'व्हाट हैज इण्डिया टू डू?' शीर्षक से एक लेख लिखा था। इस लेख में उन्होनें जो कुछ लिखा, वह स्वाधीनता आंदोलन सम्बन्धी उनके विचारों को जानने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह लेख आचार्य शुक्ल ने बंग-भंग विरोधी आंदोलन के बाद लिखा था जिसकी देन 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' जैसे आंदोलन थे। इसके आरम्भ में ही उन्होनें कहा था कि ''हमें एक साथ ऐसे लोगों की जरूरत है, जो सामाजिक-सुधारक, राजनीतिक-आंदोलनकर्ता, कवि और शिक्षाविद हों।''[1] इसमें ध्यान देने की बात यह है कि शुक्ल जी 'राजनीतिक-आंदोलनकर्ता' और 'कवि' दोनों को एक ही संदर्भ में याद करते हैं, जो उनके दृष्टिकोण में आंदोलन के साथ साहित्य के सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से परिलक्षित करता है। अपने लेख में शुक्ल जी सामाजिक बुराइयों के निष्क्रमण और नयी शिक्षा के प्रचार पर जोर देते हैं, ताकि लोगों में उच्च दायित्वबोध को पैदा किया जा सके- ''ऐसी शिक्षा, जो दूसरी बातों के अतिरिक्त एक उच्च उत्तरदायित्व के भाव से किसी को युक्त कर देती है और उसकी महत्वाकांक्षाओं के लिए ऐसे क्षेत्र प्रदान करती है, जो

सलाम बजाने या माल गुजारी इकट्ठा करने के काम से बड़े होते हैं।''[2] शिक्षा का वे यह अर्थ भी बताते हैं कि उसके माध्यम से अशिक्षित जनता तक सामान्य महत्व के विषयों पर व्यक्त की गयी नेताओं की राय पहुँचायी जाए, जिससे कि समय आने पर उसके अज्ञान के कारण उनके सहयोग से वंचित न होना पड़े। इसी संदर्भ में आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि ''प्रत्येक ग्रामवासी को यह जानना चाहिए कि अधिक काम करने के बाद भी उसे कम क्यों मिलता है, प्रत्येक नागरिक को यह बताया जाना चाहिए कि उसकी सेवाओं की माँग कम क्यों है और वास्तव में प्रत्येक भारतवासी को यह साफ-साफ पता होना चाहिए कि दिन प्रतिदिन उसका देश गरीब क्यों होता जा रहा है! यदि आप चाहें तो इसे राजनीतिक शिक्षा कह सकते हैं। इस प्रकार की शिक्षा देने के लिए हमें विभिन्न तरीके और साधन अपनाने होंगे। स्कूल और कॉलिज ही इस शिक्षा के स्थान नहीं होने चाहिए। सार्वजनिक व्याख्यानों के द्वारा हम बहुत कुछ कर सकते हैं। सुविधाजनक स्थानों पर ऐसे व्याख्यानों का आयोजन किया जाना चाहिए और लोगों को सुदूर देहातों में जाकर भारतीय जनसमूह को उन परिस्थितियों से परिचित कराना चाहिए, जो उन्हें प्रभावित कर रही हैं। यहाँ उन्हें इसके साथ ही कर्म का मार्ग भी बताना चाहिए।''[3]

ज्यादातर राजनीतिक आंदोलनों के मूल में आर्थिक कारण होते हैं। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के साथ भी यही बात थी। आचार्य शुक्ल की दृष्टि चूँकि भारतीय जनता की आर्थिक स्थिति पर थी, इसलिए उन्होनें ब्रिटिश शासन के साम्राज्यवादी चरित्र को आसानी से पहचान लिया। वे लिखते हैं कि '' जहाँ तक हम देख पाये हैं, साम्राज्यवाद ही भारत में ब्रिटिश राष्ट्र की नीति की प्रेरक शक्ति रहा है।''[4] उन्हें बंगाल के स्वदेशी आंदोलन में राष्ट्र की आर्थिक प्रगति का मार्ग दिखायी पड़ा। उन्होंने अंग्रेजों का भरोसा न कर भारतीय जनता को भुखमरी और बेकारी से बचाने के लिए अपनी औद्योगिक इकाई लगाने की आवश्यकता पर बल दिया और स्पष्ट कर दिया कि ''इस घड़ी में जो हमारे साथ है, वे मित्र हैं; जो हमसे अलग है, वे उदासीन हैं और जो हमारा विरोध करते हैं, वे शत्रु हैं।''[5]

आगे चलकर आचार्य शुक्ल साम्राज्यवाद के वास्तविक चरित्र की पहचान प्रथम विश्व-युद्ध के संदर्भ में उजागर करते हैं। फरवरी 1919 में 'लोभ या प्रेम' शीर्षक से प्रकाशित अपने निबन्ध में शुक्ल जी लिखते हैं कि ''कोई-कोई देश लोभवश इतना अधिक माल तैयार करते हैं कि उसे किसी देश के गले मढ़ने की फिक्र में दिन रात मरते रहते हैं। जब तक यह व्यापारोन्माद दूर ना होगा तब तक इस पृथ्वी पर सुख-शान्ति न होगी।''[6] साम्राज्यवाद के औपनिवेशिक शोषण के प्रति शुक्ल जी का दृष्टिकोण उनके इस कथन से और अधिक स्पष्ट होता है, ''योरप के देश इस धुन में लगे कि व्यापार के बहाने दूसरे देशों से जहाँ तक धन खींचा जा सके बराबर खींचा जाता रहे। पुरानी चढ़ाइयों की लूटपाट का सिलसिला आक्रमण काल तक ही-जो बहुत दीर्घ नहीं हुआ करता था-रहता था। पर योरप के अर्थोन्मादियों ने ऐसी गूढ़, जटिल और स्थायी प्रणालियाँ प्रतिष्ठित कीं जिसके द्वारा भूमण्डल की न जाने कितनी जनता का क्रम-क्रम से रक्त चुसता चला जा रहा है, न जाने कितने देश चलते फिरते कंकालों के कारागार हो रहे हैं।''[7]

देश भक्ति आचार्य शुक्ल के सम्पूर्ण साहित्य के मूल में है। यही उनके साहित्य सृजन का प्रेरक तत्व है। सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के मूल्यांकन के लिए, और विशेष रूप से आधुनिक हिन्दी साहित्य के मूल्यांकन के लिए उन्होनें बुनियादी प्रतिमान के रूप में जिस दृष्टिकोण का इस्तेमाल किया, वह उनकी राष्ट्रीय चेतना से संपन्न दृष्टि ही है, जो देश की राजनीति और राजनीतिक आंदोलनों का प्रतिफल है। उनके साहित्य सृजन और विवेचन में राजनीतिक आंदोलनों की जो भूमिका रही, वह उनके 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आधुनिक काल के रचनाकारों पर की जाने वाली उनकी टिप्पणियों से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हों या बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', मैथलीशरण गुप्त हों या रामनरेश त्रिपाठी, या फिर माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन और दिनकर, उन्होनें सभी के साहित्य पर इस दृष्टि से विचार किया है कि उनकी राजनीतिक चेतना कैसी थी और राजनीतिक आंदोलनों से उनका कैसा सम्बन्ध था। प्रेमघन के बारे में वे लिखते हैं कि ''देश की राजनीतिक परिस्थितियों पर इनकी नजर बराबर बनी रहती थी। देश की दशा सुधारने के लिए जो राजनीतिक या धर्म सम्बन्धी आंदोलन चलते रहे, उन्हें ये बड़ी उत्कण्ठा से परखा करते थे। जब कहीं कुछ सफलता दिखायी पड़ती, तब लेखों और कविताओं द्वारा हर्ष प्रकट करते; और जब बुरे लक्षण दिखायी देते, तब क्षोभ और खिन्नता। कांग्रेस के अधिवेशनों में वे प्राय: जाते थे।''[8] इसी प्रकार मैथलीशरण गुप्त के बारे में सूचित किया है कि ''इधर के राजनीतिक आंदोलनों ने जो रूप धारण किया उसका पूरा आभास (इनकी) पिछली रचनाओं में मिलता है।''[9] इस सम्बन्ध में उनका यह कथन उल्लेखनीय है कि '' शासन की अव्यवस्था और अशान्ति के उपरान्त अंग्रेजों के शान्तिमय और रक्षा पूर्ण शासन के प्रति कृतज्ञता का भाव भारतेन्दु काल में बना हुआ था। इससे उस समय की देश-भक्ति सम्बन्धी कविताओं में राजभक्ति का स्वर भी प्राय: मिला पाया जाता है। देश की दुख-दशा का प्रधान कारण राजनीतिक समझते हुए भी उस दुख-दशा से उद्धार के लिए कवि लोग दयामय भगवान को ही पुकारते मिलते हैं। कहीं-कहीं उद्योग धन्धों को न बढ़ाने, आलस्य में पड़े रहने और देश की बनी वस्तुओं का व्यवहार न करने के लिए वे देशवासियों को भी कोसते पाये जाते हैं। सरकार पर रोष या असन्तोष की व्यंजना उनमे नहीं मिलती। कांग्रेस की प्रतिष्ठा होने के उपरान्त भी बहुत दिनों तक देश भक्ति की वाणी में विशेष बल और वेग न दिखायी पड़ा। बात यह थी कि राजनीति की लम्बी चौड़ी चर्चा भर साल में एक बार धूम धाम के साथ थोड़े से शिक्षित बड़े आदमियों के बीच हो जाया करती थी, जिसका कोई स्थायी और क्रियोत्पादक प्रभाव नहीं देखने में आता था। अत: द्विवेदी काल की देश भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में शासन पद्धति के प्रति असन्तोष तो व्यंजित होता था, पर कर्म में तत्पर करने वाला, आत्मत्याग करने वाला जोश और उत्साह न था। आंदोलन भी कड़ी याचना के आगे नहीं बढ़े थे।''[10] इसी सम्बन्ध में वे आगे लिखते हैं कि ''तृतीय उत्थान में आकर परिस्थिति बहुत बदल गयी। आंदोलनों ने सक्रिय रूप धारण किया और गाँव-गाँव राजनीति और आर्थिक परतन्त्रता के विरोध की भावना जगायी गयी। सरकार से कुछ माँगने के स्थान पर अब कवियों की वाणी देशवासियों को ही 'स्वतन्त्रता देवी की वेदी पर बलिदान' होने को प्रोत्साहित करने में लगी। अब जो आंदोलन चले वे सामान्य जनसमुदाय को भी साथ लेकर चले। इससे उनके भीतर अधिक आवेश और बल का संचार हुआ।''[11] आचार्य शुक्ल के इन कथनों से साफ साफ अनुमान लगाया जा सकता है कि वे भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी कविता के पारस्परिक गहरे सम्बन्धों को कितनी बारीकी से निरूपित कर रहे थे। जहाँ

भारतेन्दु युग में शासन के प्रति कृतज्ञता का भाव भी बना हुआ था इसीलिए कविता में सरकार के प्रति रोष या असन्तोष का भाव व्यक्त नहीं किया गया! द्विवेदी युग में भी कविता में शासन के प्रति असन्तोष तो व्यक्त हुआ, परन्तु उसमें कर्म और त्याग के लिए तत्पर कराने वाला उत्साह न दिखायी पड़ा! द्विवेदी युग के बाद स्वाधीनता-आंदोलन किसानों तक फैला, परिणामत स्वरूप कवियों की वाणी बलिदान की प्रेरणा देने लगी!

हालांकि इस पूरे विवेचन में शुक्ल जी के दृष्टिकोण में एक समस्या दिखायी देती है। वह यह कि तृतीय उत्थान के जिन कवियों की वाणी में राजनीति से लेकर सामाजिक आंदोलनों तक की प्रतिध्वनि आचार्य शुक्ल को सुनायी पड़ती है वे कवि दिनकर, नवीन और माखनलाल चतुर्वेदी हैं। शुक्ल जी को प्रसाद और निराला जैसे कवियों का स्वाधीनता आंदोलन से कोई विशिष्ट सम्बन्ध दिखायी नहीं पड़ता। उनके काव्य में उग्रता भरे उस दौर की प्रतिध्वनि नहीं सुनायी पड़ी। अगर पंत में उन्हें यह सुनाई भी पड़ा तो कविता के धरातल पर उन्हें संतोष न दे सका। यह छायावाद के प्रति शुक्ल जी की अवधारणा का ही परिणाम था कि वे यह नहीं पहचान सके कि इन कवियों में स्वाधीनता आंदोलन की प्रतिध्वनि और अधिक गहराई से सुनायी पड़ती थी।

आचार्य शुक्ल के जीवनीकार चन्द्रशेखर शुक्ल लिखते हैं ''शुक्ल जी राजनीति में उग्र विचार रखते थे। उन्हें तिलक की नीति पसन्द थी।... गोखले की विद्याबुद्धि और त्याग की वे प्रशंसा करते थे और सर तेजबहादुर सप्रू, सी.वाई.चिन्तामणि और वी.श्रीनिवास शास्त्री से प्रभावित थे, पर उनकी नीति से उन्हें सन्तोष न था।''[12] बंग-भंग विरोधी आंदोलन के साथ भारतीय स्वाधीनता आंदोलन सक्रियता के नए दौर में प्रवेश करता है और आचार्य शुक्ल की राजनीतिक चेतना बंग-भंग विरोधी और स्वदेशी एंव बहिष्कार आंदोलनों से ही परिपक्व हुई। शुक्ल जी स्वदेशी आंदोलन में अग्रणी भूमिका तिलक की ही मानते थे। शुक्ल जी पर तिलक के कर्म योग का गहरा प्रभाव था। कर्म और कर्म-सौन्दर्य आचार्य शुक्ल के लिए ऐसा प्रतिमान रहा है जिस पर उन्होनें हमेशा कवियों और काव्य-धाराओं को परखा। काव्य क्या कर सकता है इसके सम्बन्ध में उनका मानना था कि ''शुद्ध ज्ञान या विवेक में कर्म की उत्तेजना नहीं होती। कर्म के लिए मन में कुछ वेग का आना आवश्यक है।''[13] अपने 'श्रद्धा-भक्ति' शीर्षक निबन्ध में शुक्ल जी लिखते है- ''संसार से तटस्थ रहकर शान्ति-सुखपूर्वक लोकव्यवहार सम्बन्धी उपदेश देनेवालों का उतना महत्व हिन्दू धर्म में नहीं है, जितना संसार के भीतर घुसकर उसके व्यवहारों के बीच सात्विक विभूति की ज्योति जगाने वालों का है। हमारे यहाँ उपदेशक ईश्वर के अवतार नहीं माने गए हैं। अपने जीवन द्वारा कर्म-सौंदर्य संघटित करने वाले ही अवतार कहे गये हैं। कर्म-सौंदर्य के योग से उनके स्वरूप में इतना माधुर्य आ गया है कि हमारा हृदय अपने आप उनकी ओर खिंचा पड़ता है।''[14] आचार्य शुक्ल का कर्मवाद उन्हे तोलस्तोय के 'निष्क्रिय प्रतिरोध' ही नहीं, महात्मा गाँधी के 'सत्याग्रह' के विरोध तक ले गया। हिन्दी साहित्य का इतिहास में उन्होनें कहा है कि ''साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध तोलस्तोय की धर्म-बुद्धि जगाने वाली वाणी का 'भारतीय अनुवाद' महात्मा गाँधी ने किया।''[15]

सितम्बर 1920 में कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ था, जिसमें महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव को स्वीकृत कराया। 1921 में बाँकीपुर, पटना से प्रकाशित होने वाले समाचारपत्र 'एक्सप्रेस' में आचार्य शुक्ल ने कई किस्तों में 'नन-कोऑपरेशन एण्ड नन-मर्केन्टाइल क्लासेज' शीर्षक से एक लेख लिखकर असहयोग-आंदोलन की कड़ी आलोचना की। 'दस्तावेज' (गोरखपुर) के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-विशेषांक (अक्टूबर 83, जनवरी 84) में उसका एक अंश अनुदित रूप में 'असहयोग और अव्यापारिक श्रेणियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस लेख में आचार्य शुक्ल ने असहयोग आंदोलन को एक अनिश्चित योजना, सतही विद्रोह और कोलाहल मात्र बताया। इस आंदोलन के बारे में शुक्ल जी का मानना था कि 'बिना सोचे विचारे लोग इसकी ओर दौड़ पड़े।' इतना ही नहीं गाँधी के नेतृत्व पर भी शुक्ल जी ताज्जुब जताते हुए कहते हैं कि''लोगों की गाँधी के प्रति आस्था क्यों है, सत्याग्रह आंदोलन की नियति देखकर मि. गाँधी की प्रणाली के प्रति विश्वास डिग जाना चाहिए था।''[16] गाँधी के प्रति इस अंधभक्ति को देखकर शुक्ल जी का कहना था ''क्योंकि व्यक्तित्वों के प्रति रहस्यवादी भक्ति भारतीय जन-समूह की चारित्रिक विशेषता है।''[17] गाँधी के नेतृत्व को लेकर शुक्ल जी का यह भी मानना था कि ''लोकमान्य तिलक की मृत्यु ने राष्ट्रवादियों के पूरे दल को मि. गाँधी की अनुकम्पा पर छोड़ दिया था।''[18] जब भारतीय जनता अंग्रेजी राज के दमन और अत्याचार के कुचक्र से क्षुब्ध थी, खिलाफत का सवाल मुसलमानों को खौला रहा था और जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड राष्ट्रीय अपमान का प्रतीक बन गया था, तब समूची भारतीय जनता अंग्रेजी सरकार के प्रति संघर्ष करना चाहती थी। ऐसी परिस्थितियों में शुक्ल जी का तिलक के 'होमरूल' की नीतियों में आस्था और 'असहयोग' का विरोध सही नहीं जान पड़ता। इस सम्बन्ध में शुक्ल जी का कथन है, ''असहयोग आंदोलन के ऐसे लक्ष्यहीन और असन्तुलित चरित्र का पर्दाफाश करने तथा इसकी पताका के नीचे छद्मवेश में छिपी हुई दुष्ट शक्तियों का पर्दाफाश करने के लिए जनता के समक्ष स्पष्ट और सुनिश्चित स्वराज्य (होमरूल) विकल्प के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।''[19]

असहयोग का विरोध करने वाले शुक्ल जी अकेले न थे। एनी बेसेन्ट, मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, विपिन चन्द्रपाल सरीखे कांग्रेस के कई दिग्गज नेताओं ने गाँधी के असहयोग प्रस्ताव का पुरजोर विरोध किया। सभी ने इस प्रस्ताव को एक सिरे से ना केवल खारिज किया बल्कि इस प्रस्ताव को अव्यवहारिक, अनिश्चित, मूर्खतापूर्ण, गैरकानूनी और खतरनाक बताया। इनके समर्थन में शुक्ल जी लिखते है कि -''कलकत्ता के विशेष कांग्रेस अधिवेशन में वयोवृद्ध एंव सम्मानित नेता केवल नगण्य ही नहीं हुए अपितु गाँधी के अनुयायियों द्वारा ये खुलेआम अपमानित किये गये।''[20] लेकिन जनता ने सारे विरोध के बावजूद इस प्रस्ताव को पास किया।

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के हर विकास को ध्यान से देख रहे 'लेनिन' ने भी असहयोग आंदोलन को उठता देखकर 1921 में लिखा- ''एशियाई देशों की जनता विश्व राजनीति और साम्राज्यवाद के क्रांतिकारी विध्वंस की एक महत्वपूर्ण शक्ति बनती जा रही है। ऐसे देशों में भारत सबसे आगे है जहाँ क्रांति की ओर बढ़ने की तीव्रता दिखायी दे रही है।''[21] गाँधी के विषय में उन्होंने

कहा कि ''भारतीय जनता को प्रेरित करने और उसे नेतृत्व प्रदान करने के लिहाज से वे क्रांतिकारी हैं।'' जबकि दूसरी ओर आचार्य शुक्ल ने लिखा कि ''इसके बहुत से विचारशील नेता जिनमें महाराष्ट्रीय लोग भी सम्मिलित हैं, अपनी पीठ पर तमाम सामाजिक एंव आर्थिक विचारधाराओं की गठरी लादे हुए कांग्रेस की प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए चुपचाप असहयोगियों की कतार में शामिल हो गये।''[22] प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बदलती वैश्विक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि पर ब्रिटिश सरकार द्वारा लागू किये गये काले कानूनों और दमन से क्षुब्ध मध्यवर्ग, खिलाफत से बेचैन मुसलमान, महँगाई के मारे मजदूर, सामन्ती जुल्म और अँग्रेजी राज के छल से क्रोधित किसान ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष के लिए तैयार खड़े थे। इसी संघर्ष का मसौदा लेकर सही समय पर गाँधी आगे आये। शायद राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय परिघटनाओं और संघर्ष की माँग की परिस्थितियों में शुक्ल जी ठीक से तादात्म्य नहीं बैठा पा रहे थे और आंदोलन के नेतृत्व का राज व्यक्तित्व की सफलता में तलाश रहे थे जबकि असहयोग आंदोलन गाँधी के व्यक्तित्व की सफलता नहीं, परिस्थितियों का तकाजा था।

असहयोग आंदोलन के सम्बन्ध में शुक्ल जी का मानना था कि यह आंदोलन वस्तुतः व्यापारी वर्ग के हित में है तथा आंदोलन का कार्यक्रम भावनात्मक अधिक है, ठोस और व्यावहारिक कम। आचार्य शुक्ल का मानना था कि जिस व्यापारिक और पूँजीपति वर्ग ने असहयोग आंदोलन में सबसे ज्यादा उत्साह दिखाया और गाँधी का समर्थन किया, यह वही वर्ग था जो अभी तक अँग्रेजी राज के संरक्षण और सुविधाओं में पलकर मोटा होता रहा। शुक्ल जी की नजरों में चूंकि यह आंदोलन मुख्यत: व्यापारी वर्ग का था और इस आंदोलन के जरिए व्यापारी वर्ग, कृषक वर्ग को अपने प्रभाव के मातहत लाना चाहता था, इसलिए उन्होनें देहातों में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रसार के प्रयत्न को व्यापारी वर्ग के, असहयोग आंदोलन में उत्साह के रूप में देखा। असहयोग आंदोलन के असन्तुलित चरित्र को दिखाते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि ''इस आंदोलन में व्यापारी वर्ग को कोई त्याग नहीं करना पड़ा; सारा त्याग मध्यवर्ग के मत्थे डाल दिया गया है।''[23] इस लेख में गैर व्यापारिक वर्गों के पक्ष से असहयोग आंदोलन की खामियों और अव्यवहारिकता पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी सवाल उठाते हैं कि ''इस आंदोलन में त्याग और बलिदान किनसे माँगा जा रहा है। जाहिर है छात्रों से शिक्षा संस्थाएं छोड़ने के लिए कहा जा रहा है, नौकरी पेशा वर्ग से त्यागपत्र देने के लिए और किसानों को राजस्व भुगतान न कर, जमीन नीलामी का खतरा उठाने के लिए। लेकिन गाँधी की छत्र-छाया में आंदोलन का नेता बने हुए व्यापारी वर्ग से क्या बलिदान माँगा जा रहा है?'' इस स्थिति का अवलोकन करने के बाद शुक्ल जी व्यापारी वर्ग की उन्नति और असहयोग आंदोलन द्वारा उसकी पक्षधरता के सम्बन्ध में लिखते हैं- ''पश्चिम के राष्ट्र अपने को जिससे मुक्त करने की चेष्टा कर रहे हैं उसी पूँजीवाद की ओर यह एक बढ़ता कदम है। वह पूँजी बटोरने और समाज में व्यक्तिवादी जीवन मूल्यों के क्षुद्र अमरीकी मानदण्ड स्थापित करने का प्रयास भर है।''[24] कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल सामन्ती संस्कृति की कुरूपताओं से ग्रस्त इस पराधीन देश में स्वाधीनता आंदोलन के विभिन्न पहलुओं की बारीकियों और तत्कालीन जरूरतों को पहचानने से ज्यादा ध्यान पूँजीवाद की कुरूपताओं पर देने लगते हैं जो अन्ततः भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के लिए समस्याप्रद हो जाता है।

अपने लेख की शुरुआत शुक्ल जी अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज व्यवस्था के वर्णन से करते हैं। शुक्ल जी के मुताबिक अंग्रेजों के आगमन से पहले के भारतीय समाज में मुख्यतः दो विभाजन थे, व्यापारिक और अव्यापारिक। अव्यापारिक वर्गों में कृषि और राजकीय सेवाओं से जुड़े लोग थे। हर वर्ग या समुदाय के काम और अधिकार के अपने क्षेत्र थे, जिनमें वे सन्तुष्ट थे। व्यापारी कृषि या राजकीय क्षेत्र में नहीं घुसते थे, कृषि या राजकीय सेवाओं से जुड़े लोग व्यापार नहीं करते थे। शुक्ल जी के ही शब्दों में ''इस प्रकार समाज में पूरा सन्तुलन रखा गया।'' यह सामंजस्यपूर्ण सामन्ती समाज अंग्रेजों के आने से टूट गया- ''ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रूप में यूरोप के घृणित व्यापारवाद ने भारत में कदम रखा और समाज के द्विस्तरीय विभाजन के आधार पर जो सामंजस्य इतने दिनों से चला आ रहा था उसे अस्त-व्यस्त कर दिया।''[25] शुक्ल जी की यह धारणा विचारणीय है कि अंग्रेजों के पहले सामन्ती भारतीय समाज 'सन्तुलित' और 'सामंजस्यपूर्ण' समाज था। राष्ट्रीय आंदोलन के सन्दर्भ में शुक्ल जी का यह दृष्टिकोण उचित नहीं जान पड़ता। तत्कालिक समाज व्यवस्था का वर्णन करते समय शुक्ल जी सामन्ती शोषण के कई तत्वों को नजरअंदाज करते हैं, जिस पर तत्कालिक समाज व्यवस्था टिकी थी। इतना ही नहीं, व्यवस्था के वर्णन में शुक्ल जी सर्व-साधारण की घोर दरिद्रता और लगान के दलदल में फँसे रैयत के सवालों पर चुप रहे, क्योंकि अंग्रेजी राज के खिलाफ सामन्ती समाज को सन्तुलित और सामंजस्यपूर्ण कहना, लगान और रैयत पर सामन्ती शोषण के सवालों पर चुप रहकर ही सम्भव था।

शुक्ल जी की दूसरी धारणा यह है कि भारत में कम्पनी-राज और ब्रिटिश शासन का मुख्य आधार यहाँ का व्यापारी और पूँजीपति वर्ग रहा है- ''कम्पनी अपने व्यापारिक प्रचार-प्रसार के लिए बनियों पर आश्रित थी, इसलिए उसने केवल उन्हीं के अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न की।''[26] शुक्ल जी का यह भी मानना था कि ब्रिटिश सरकार ने सरकारी राजस्व नीति, भूमि सम्बन्धी जटिल कानूनी प्रक्रियाओं, लोभी वकीलों, बनियों, सरकारी कर्मचारियों के बल पर कृषक वर्गों (किसान और जमींदार) को तबाह कर दिया। इसका उल्लेख करते हुए शुक्ल जी लिखते हैं कि ''जमीन से जुड़े वर्ग जबकि प्रतिदिन इस प्रकार विनाश की ओर खींचे जा रहे थे, नगरों के बनिया आयात-निर्यात उद्योग द्वारा प्रचुरतम लाभ पैदा कर रहे थे।... जबकि एक वर्ग सरकार द्वारा अपने ऊपर लादी गयी असुविधाओं के मातहत श्रम कर रहा है, दूसरा वर्ग ब्रिटिश संरक्षण के सारे आशीर्वादों का पूरा आनन्द लेता हुआ उसका मजाक उड़ा रहा है।''[27] भारतीय पूँजीपति वर्ग को कम्पनी राज का मुख्य आधार मानने का शुक्ल जी का यह दृष्टिकोण उचित नहीं जान पड़ता। सर्वप्रथम तो शुक्ल जी द्वारा किया जाने वाला श्रेणी विभाजन ही सही नहीं है कि वे किसान और जमींदार को एक 'कृषक वर्ग' कहते हैं और किसान से जमींदार तक (जिसमें राजकीय सेवाओं से जुड़े सरकारी कर्मचारियों को भी रखा गया है) को एक साथ रखकर 'अव्यापारिक श्रेणी' बनाते हैं। इस सम्बन्ध में यह जान लेना भी जरूरी है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आमदनी का मुख्य स्त्रोत भू-राजस्व था, जिसके लिए कम्पनी भू-स्वामियों पर आश्रित थी। कम्पनी राज में कम्पनी ने जमींदारों को जमीन का मालिकाना हक देकर और राजस्व वसूली के सभी अनैतिक अधिकारों से लैस कर किसानों पर थोप दिया था। यह जमींदार वर्ग ही था जो अपने बाहुबल के दम पर कम्पनी के दलाल के रूप में रैयत पर अत्याचार कर लगान वसूलता था जिसका आधा हिस्सा इस सामन्त वर्ग

को भी प्राप्त होता था। इस प्रकार कम्पनी सरकार ने अपनी जरूरतों के मुताबिक नये अधिकारों से लैस एक ऐसा सामन्ती वर्ग खड़ा किया, जो पहले से भी अधिक क्रूर और बर्बर था। यह दलाल सामन्त वर्ग ही भारत में अंग्रेजी राज का मुख्य आधार था।

शुक्ल जी अपने विश्लेषण में व्यापारी वर्ग द्वारा जमींदारों की तबाही का तो वर्णन करते हैं किन्तु इसी जमींदार वर्ग के सामन्ती पक्ष को उजागर नहीं करते। उन्होनें इस सामन्ती वर्ग के चरित्र का तनिक भी उल्लेख नहीं किया, जिसके कारण किसान निलाम हुए और अंग्रेज सरकार द्वारा बेदखल किये गये। शुक्ल जी अपने विश्लेषण में जमींदारों की तबाही को तो इंगित करते हैं पर जमींदारों द्वारा रैयत पर किये जाने वाले शोषण-उत्पीड़न की कहानी नहीं कहते। सच तो यह है कि कम्पनी संरक्षित व्यापारी वर्ग जितना जमींदारों को बेदखल कर रहे थे, उससे कई गुना अधिक और अन्याय पूर्ण ढंग से ये सामन्त वर्ग आसामियों को बेदखल कर रहा था।

वास्तविकता तो यह है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक कम्पनी थी जिसने अपनी घृणित व्यापारवादी नीतियों से भारतीय व्यापार और उद्योग धंधों को चौपट कर दिया था। इतिहास में विदित है कि कम्पनी ने अपनी नाजायज, अव्यापारिक नीतियों के बल पर किस प्रकार भारतीय वस्त्र उद्योग और बुनकरों को उजाड़ दिया। भारत का बल पूर्वक विऔद्योगीकरण किया। अपने अनैतिक अत्याचारों के बल पर भारतीय शिल्प उद्योग को नष्ट कर व्यापारियों और कारीगरों को पूरी तरह से तबाह करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ी और कृषि पर बढ़ती निर्भरता के चलते भारत एक कृषि प्रधान देश बना दिया गया। इतिहासकार बिपिन चन्द्र के अनुसार- '' व्यापार का कोई क्षेत्र न था जहाँ भारतीय व्यापारी प्रभुत्वशाली स्थिति में हो। हर जगह वे निचली सीढ़ियों पर थे। यहाँ तक कि हिन्दी प्रदेश में गल्ले के निर्यात-व्यापार में भी, जहाँ हिन्दुस्तानी आढ़तियों की संख्या ज्यादा थी, रॉनी ब्रदर्स जैसी अंग्रेज व्यापारिक कम्पनियाँ प्रभावशाली थीं। उद्योग में ऐसा कोई क्षेत्र न था जहाँ भारतीय पूँजी का पूरा नियन्त्रण और स्वामित्व हो। यहाँ तक कि वस्त्र उद्योग में भी, जिसे भारतीय पूँजी का गढ़ माना जाता था, आंशिक पूँजी विदेशी थी, प्रबन्ध अधिकांशतः विदेशी था और तकनीक का अधिकांश जबरन आयात करना पड़ता था।''[**28**]

भारत में राष्ट्रीय आंदोलन की शुरूआत इसी माँग के साथ हुई थी कि भारत के शिल्प, व्यापार और उद्योग के रास्ते से रोड़े हटाये जायें, उन्हे बढ़ने का मौका दिया जाय। दादा भाई नौरोजी, रमेशचन्द दत्त, बी.जी.जोशी और जस्टिस रानाडे, सभी राष्ट्रवादी नेताओं ने अंग्रेजी राज की आलोचना करते हुए बहुत परिश्रम से जमा किए गये तथ्यों और आकड़ों से यह साबित करके दिखाया कि अंग्रेज राज ने भारतीय व्यापार और उद्योग को न सिर्फ तबाह किया, बल्कि हर तरह से उसके विकास में रूकावटें खड़ी कीं, लेकिन आचार्य शुक्ल अंग्रेजी राज में किसानों, जमींदारों और व्यापारियों से सम्बन्धित अन्तर्विरोध को विश्लेषित करने में अपने एकांगी दृष्टिकोण का सहारा लेते रहे, जो उनके राष्ट्रीय आंदोलन सम्बन्धित दृष्टिकोण को उजागर करता है।

निष्कर्ष :_आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी प्रदेश में राष्ट्रीय आंदोलन के साहित्यिक मोर्चे पर सामने आये। उन्होंने साहित्य को लोक जीवन से जोड़ने की मांग कर साहित्य को जनसमस्याओं से जोड़कर देखा। उन्होनें अपना लेखन जिन प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में किया, वे

राष्ट्रीय अस्मिता और राष्ट्रीय परम्परा से सम्बन्धित थे। उन्होंने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के मूल में निहित आर्थिक कारणों को उजागर करते हुए राजनीतिक आंदोलनों की जरूरत को समझा। उन्होंने न केवल भारतीय जनता की आर्थिक स्थितियों को समझा बल्कि उसके लिए उत्तरदायी ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के चरित्र को भी उजागर किया। इस विवेचन में शुक्ल जी कृषक वर्गों के संगठन के प्रति तो सचेत दिखाई देते हैं किन्तु स्वाधीनता आंदोलन में मजदूरों की भूमिका को ठीक से रेखांकित नहीं करते। वे स्वाधीनता आंदोलन और उस दौर की राजनीतिक गतिविधियों को बहुत निकट से देख रहे थे। अपने साम्राज्यवाद विरोधी साहित्य लेखन में शुक्ल जी ने राष्ट्रीय चरित्र संबंधी प्रश्नों का विवेचन किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना था कि किसी भी राष्ट्रीय गौरव का महत्वपूर्ण आधार है इतिहास। बिना इतिहास के राष्ट्र का स्वरूप संभव नहीं और न उसकी पहचान। शुक्ल जी का सारा लेखन स्वाधीनता आंदोलन की प्रेरणा और प्रभाव से जुड़ा हुआ है। उस समय में अंग्रेजों ने जब यह प्रचारित कर रखा था कि भारत एक असभ्य देश है, तो आचार्य शुक्ल ने यह महसूस किया कि भारतीयों में आत्म-गौरव का बोध जगाने के लिए अपनी परंपराओं के व्यवस्थित ज्ञान से परिचित होना अत्यंत आवश्यक है। इस साहित्यिक संघर्ष का उत्कर्ष 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' है। यह अत्यन्त रूचिकर है कि शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास के चरणबद्ध विकास को जिस तरह व्याख्यायित किया वह निश्चित रूप से विद्यार्थियों की जरूरतों को उन संदर्भों में देखकर लिखा जिन्हें राष्ट्रीय आंदोलन ने पेश किया था। कुल मिलाकर कहा जाये तो साहित्य के प्रति आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की अवधारणों के निर्माण में और उनकी आलोचना दृष्टि के विकास में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

संदर्भ सूची-

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. भारत को क्या करना चाहिए? (अपूर्वानन्द द्वारा अनूदित) आलोचना, 1985, पृ. 3
2. वही, पृ.4
3. वही, पृ.4
4. वही, पृ.5
5. वही, पृ.6
6. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. चिन्तामणि भाग-1. काशी: सरस्वती मन्दिर, 1953, पृ.74
7. वही,पृ.129
8. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. वाराणसी: नागरी प्रचारणी सभा, 1984, पृ.515
9. वही, पृ.536

10. वही, पृ. 561

11. वही, पृ.562

12. चन्द्रशेखर शुक्ल, रामचन्द्र शुक्ल, पृ.79

13. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. चिन्तामणि भाग-1. काशी : सरस्वती मन्दिर, 1953, पृ.188

14. वही, पृ.41-42

15. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. वाराणसी: नागरी प्रचारणी सभा, 1984, पृ. 562

16. दस्तावेज-21-22, कुसुम चतुर्वेदी द्वारा अनुदित (नॉन कोऑपरेशन एण्ड नॉन मर्केण्टाइल क्लासेज?), पृ.8

17. वही, पृ.8

18. वही, पृ.8

19. वही, पृ.9

20. वही, पृ.10

21. राय: मेमॉयर्स, बम्बई, 1964, पृ.369

22. वही, पृ.370

23. दस्तावेज-21-22, कुसुम चतुर्वेदी द्वारा अनुदित (नॉन कोऑपरेशन एण्ड नॉन मर्केण्टाइल क्लासेज?), पृ.11

24. वही, पृ.11

25. वही, पृ.6

26. वही, पृ.6

27. वही, पृ.7

28. चन्द्र, बिपिन. भारतीय आर्थिक राष्ट्रवाद का अभ्युदय. दिल्ली: हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ.84

भारत में इज़्ज़त के नाम पर होने वाले अपराधों का बदलता स्वरूप

रानी रोहिणी रमण

सहायक प्रोफेसर, स्कूल ऑफ़ डेवलपमेंट,अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, भोपाल

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 37 –40 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

शोध-सार

पिछले कुछ सालों से इज्जत के नाम पर हत्या की बहस कम होते दिख रही है, पर इसका तात्पर्य यह बिल्कुल भी नहीं लगाया जा सकता की इस प्रकार की हिंसा में कमी हुई है। यह आलेख भारत में इज्जत के नाम पर होने वाली हिंसा के बदलते स्वरूप के माध्यम से यह दर्शाने की कोशिश करता है की समाज के रूप में हमें उन सारे क्षेत्रों का ध्यान रखने की जरूरत है जहां इस प्रकार की हिंसा अलग-अलग स्वरूपों में घटती है। भारतीय समाज में पितृसत्तात्मकता की जड़े इतनी गहरी हैं कि समाज की प्रत्येक गतिविधि पर इसका असर होता है। यहीं कारण है कि इज्जत के नाम पर होने वाली हत्याओं को उजागिर नहीं होने दिया जाता है। समाज बदल जाने पर इसके स्वरूप में भी परिवर्तन दिखाई देता है। प्रस्तुत आलेख में इज्जत के नाम पर होने वाली हत्याओं के विविध पक्षों की गहन पड़ताल करने की कोशिश की गयी है।
बीज शब्द: इज्जत, जातिगत हिंसा, अपराध, रिपोर्टिंग, खाप पंचायत, महिला आंदोलन, लोककथा

मूल– आलेख: इज़्ज़त के नाम पर होने वाले अपराध भारत में नए नहीं हैं। भारत में कई लोक कथाएँ, संबंधों / विवाह के संबंध में युवाओं द्वारा उठाए गए कदमों पर हिंसा से जुड़ा हुआ रहा है । नारायण (2003) चुहरामल और रेशमा की एक पुरानी कहानी को प्रस्तुत किया है । चुहरामल एक दुसाद (दलित) लड़का था और रेशमा एक भूमिहार (बिहार और यू.पी. की ऊंचे जाति) थी। वे एक दूसरे के साथ संबंध में थे और रेशमा के भाई और पिता के हमले के बाद मारे गए थे। इस क्षेत्र के दलितों के लिए यह लोकगीत, लोककथा एक प्रेरक भूमिका निभाता है और हर साल बिहार के कुछ इलाकों में दलितों द्वारा चुहरामल की वीरता का जश्न मनाने के लिए एक मेले को आयोजित किया जाता है, लेकिन साथ ही उनकी कहानी पर आधारित नाटक भूमिहारों द्वारा पसंद नहीं किया जाता है । वह इस नाटक के मंचन होने पर प्रतिबंध लगाना चाहते हैं । वह इस नाटक को अपनी जाति के अपमान के रूप में देखते हैं । कई अन्य लोककथाओं में ऐसे कई अन्य उदाहरण मिल सकते हैं। यद्यपि हिंसा का ऐसा कार्य लंबे समय से किया गया है, लेकिन पश्चिमी मीडिया ने इज़्ज़त के नाम पर होने वाले हत्यायों और अपराधों का यह मौज़ूदा नामकरण किया है। अगर इज़्ज़त के नाम पर अपराध के वैश्विक परिदृश्य पर गौर किया जाये , तो जैसा कि वेल्शमैन और हुसैन (2005) ने बताया है , इज़्ज़त के नाम पर हत्याओं की ख़बरों में इज़ाफ़ा विशेष रूप से दो महिलाओं, पाकिस्तान में समिया सरवार और UK में रुखसाना नाज, के उनके परिवारों द्वारा हुई हत्या के बाद हुआ । इन दोनों हत्याओं के बाद मिडिया ने पहली बार 'ऑनर किलिंग' शब्द का सीधे सीधे प्रयोग किया, ऐसे हत्याओं पर परिवार, सरकार और अन्य लोगों के मत को प्रकाशित किया जाने लगा ।

इस नामकरण से कई शोधकर्ताओं को इस प्रकार के हिंसा को इन रूपों में वर्गीकृत करने में सुविधा हुई है। इस वर्गीकरण से अधिक मीडिया रिपोर्टिंग भी बढ़ी, जैसा की पिछले कुछ सालों में इज़्ज़त के नाम पर होने वाले अपराधों के बारे में ख़बरें ज़्यादा दिखने लगीं । यहाँ यह स्पष्ट करना ज़रूरी है की इज़्ज़त के नाम पर होने वाले अपराधों का बढ़ना या फिर ऐसे अपराधों को मीडिया

में ज़्यादा जगह मिलना यह दो विभिन्न बातें हैं। मीडिया में इज़्ज़त के नाम पर होने वाले अपराधों की रिपोर्टिंग के उदय पर चर्चा करते हुए, यह भी चर्चा करना आवश्यक है कि मीडिया में इन अपराधों पर किस तरह से चर्चा की जा रही है। चूंकि शुरुआत में इन अपराधों के अधिकांश मामलों की रिपोर्ट हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश से की जा रही थी, जहां खाप पंचायतों की अहम भूमिका ऐसे अपराधों के पीछे थी। एक लम्बे समय तक इज़्ज़त के नाम पर होने वाले हत्याओं को सिर्फ और सिर्फ खाप पंचायत के साथ जोड़ कर ही देखा जाता था। लेकिन ऐसा पाया जा सकता है कि भारत में इज़्ज़त के नाम पर अपराधों का अधिक सरलीकरण किया जाता रहा है।

भारतीय संदर्भ में, यह कहा जा सकता है कि इज़्ज़त के नाम पर होने वाले अपराध, परिवार के 'इज़्ज़त' को बचाने के लिए प्रथागत पितृसत्तात्मक अपराध का एक रूप नहीं है। जाति के आधार पर बटा हुआ समाज और धार्मिक अलगाव भी इस तरह के अपराधों में अपनी भूमिका निभाते हैं, क्योंकि भारतीय संदर्भ में सिर्फ महिलाओं नहीं बल्कि पुरुष भी 'इज़्ज़त' अपराधों के शिकार बनते हैं। ज़रुरत है वैसे अपराधों पर एक नज़र डालने की जहाँ दलित युवाओं के परिवार पर भी घातक हिंसा की गयी है। वैसी शादियां जहाँ दलित समुदाय या समाज के अन्य हाशिए वाले वर्गों के युवाओं ने दबंग जाति की लड़कियों से शादी की है, वहां पर हिंसा के शिकार न सिर्फ यह युवा होते हैं पर उनके परिवार के अन्य लोग भी बर्बरता झेलते हैं। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि भारत में, इज़्ज़त के नाम पर हत्या या अपराध, पुरूषों और महिलाओं के खिलाफ, पितृसत्ता, जाति और धर्म आधारित कारणों से किया जाता है जो कि मौजूदा सामाजिक कोड और मानदंड को बचाने की कोशिश है।

जब भारत में इज़्ज़त के नाम पर होने वाले कई हत्याओं का पता चल रहा था , 'अक्टूबर 2002 में, (UN Soclal humanltarlan and cultural commlttee) संयुक्त राष्ट्र सामाजिक, मानवीय और सांस्कृतिक समिति में भारतीय प्रतिनिधि ने सचिव-कोफी अन्नान की रिपोर्ट के खिलाफ कड़ा विरोध किया था। इस रिपोर्ट में यह सूचित किया गया था की भारत में भी इज़्ज़त के नाम पर हत्याएँ होती हैं। इस प्रकार ही कई सारे राज्यों का भी यह रवैय्या रहा है की ऐसे अपराध उस राज्य में नहीं पाए जाते हैं। मेरे अपने शोधकार्य के समय पंजाब के कई वकीलों ने सीधे शब्दों में यह कहा था की इज़्ज़त के नाम पर हत्या सिर्फ हरयाणा की समस्या है, पंजाब की नहीं। जबकि अख़बारों में आये ऐसे मामले बताते हैं की ऐसे अपराध पंजाब और हरियाणा में सामान संख्या में दर्ज होते हैं।

ज़मीनी खोज पड़ताल:

हरियाणा से आने वाले रिपोर्टों को ज़्यादा तरज़ीह दो कारणों से समझा जा सकता है - वहां पर खाप पंचायतों की उपस्थिति और दूसरा वहां के महिला आंदोलन का इन मुद्दों पर हस्तक्षेप। मनोज-बबली, रवीन्द्र-शिल्पा के मामले ऐसे हैं जहां खाप पंचायत

के आदेशों ने मनोज और बबली की मृत्यु और उनके परिवारों की सतत् पीड़ा को जन्म दिया। इन दो मामलों में खाप पंचायतों द्वारा एक मजबूत राजनीतिक और संरचनात्मक शक्ति का दावा परिलक्षित होता है, जहां एक तरफ मनोज के परिवार के सदस्यों को लगातार मौत की धमकी मिल रही थी और दूसरी ओर रविंदर के माता-पिता को अपनी संपत्ति बेचने और गांव छोड़ने को कहा गया। इन दोनों मामलों में, पुलिस और स्थानीय प्रशासन ने खाप पंचायतों के खिलाफ दृढ़ कार्रवाई नहीं की, क्योंकि इनकी नियमित बैठकें हो रही थीं और इन परिवारों पर हमले भी हो रहे थे। यह केवल स्थानीय या उच्च न्यायालयों के आदेश के बाद ही इन पीड़ित परिवारों को थोड़ी बहुत राहत मिल पायी थी।

कुछ साल पहले 13 मार्च 2016 को, बाइक पर कुछ लोगों ने दिन के उजाले में, वी शंकर और कौशल्या पर हमला किया था। पूरी घटना सीसीटीवी कैमरे में दर्ज हो गई थी क्योंकि यह घटना तमिलनाडु के तिरुपुर में एक व्यस्त बस स्टैंड में हुई थी। शंकर एक दलित समुदाय से थे जबकि कौशल्या शक्तिशाली थेवर समुदाय से थीं। शंकर की मौत हो गई जबकि कौशल्या को गंभीर चोटें आई और वो बच गईं। बाद में कौशल्या के पिता ने पुलिस के समक्ष आत्मसमर्पण किया और हमले के लिए ज़िम्मेदारी ली। इसी प्रकार 2012 में अगड़ी जाति की लड़की एन. दिव्या और दलित लड़के आई. इलवारसन ने शादी कर ली और परेशानी तब शुरू हो गईं जब दिव्या के पिता ने अपने समुदाय के सदस्यों की टिप्पणी से परेशान होने के बाद आत्महत्या की। दिव्या के पिता की मृत्यु से तमिलनाडु के धर्मपुरी में दलित घरों पर हमले हुए। इसके अलावा पीएमके के नेता एस. रामदास ने दलित लड़कों के खिलाफ कथित टिप्पणी की, जो "अल्पकालिक विवाहों के लिए ऊंची जाति की लड़कियों से शादी करते हैं"। स्थिति तनावपूर्ण और अस्थिर होने के बाद, दिव्या ने अपने पति के घर छोड़ दिया और अपनी मां के घर लौट कर अदालत में घोषित किया कि वह अपनी मां के साथ रहना चाहेगी, न कि अपने पति के साथ। दिव्या के इस बयान के कुछ दिनों के बाद, इलावारसन का मृत शरीर रेलवे ट्रैक पर पाया गया। इसी तरह, रिजवानुर रहमान का मृत शरीर कोलकाता के रेलवे पटरियों पर मिला था, रिज़वान ने कोलकाता के एक बड़े व्यापारी की बेटी से शादी की थी। मोहम्मद अब्दुल हाकिम को उनकी पत्नी के रिश्तेदारों ने उनकी शादी के कई साल बाद हत्या कर दी थी, जब उन्होंने लंबे समय तक निर्वासन में रहने के बाद अपने गांव में वापस आने की कोशिश की थी। मोनिका के परिवार के सदस्यों और यूपी पुलिस द्वारा मोनिका डागर और गौरव सैनी को जिस तरह से परेशान किया गया था, जिसने मोनिका की मृत्यु और गौरव को पुलिस हिरासत में तमाम तरह से प्रताड़ित किया गया था।

ऊपर प्रस्तुत किये गए उदहारण सतही तौर पर भारत में होने वाले इज़्ज़त के नाम पर होने वाले हत्याओं के स्वरुप को दर्शाते हैं। एक तरफ हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान, जहां खाप पंचायतें मौजूद हैं, वहां से आने वाले ऐसे कई अपराधों में खाप पंचायत की भूमिका पाई जाती है। ज्यादातर मामलों में खाप पंचायत के सदस्यों द्वारा निभाई गई भड़काऊ भूमिका शामिल होती है, जहां वे युवाओं के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए लड़की के परिवार को मजबूर करते हैं। यहाँ यह भी कहना ज़रूरी है की

ऐसा नहीं है की इन राज्यों में सारे ऐसे अपराध खाप पंचायत के मिलीभगत से ही हो रहे हैं। ऐसे कई मामले हैं जहां पिता, भाई या किसी अन्य पुरुष रिश्तेदार ने गुस्से में युवकों को मार डाला है।

प्रोफेसर प्रेम चौधरी, ने अपने कई कामों में तर्क दिया गया है कि जाति के वर्गीकरण को बनाए रखने और आर्थिक कारणों के लिए भूमि पर पकड़ बनाए रखने के लिए भी समुदाय की महिलाओं को नियंत्रित करना , इन अपराधों के पीछे के मुख्य कारण हैं। फिल्म निर्देशक नकुल सिंह शॉनी के साथ चर्चा में उनकी यह राय निकाल कर आई की किसी एक मामले में स्थानीय नेता की राजनीतिक महत्वाकांक्षा खाप की आंखों में विवाहित व्यक्ति को मारने के लिए भीड़ को उकसाने के पीछे मुख्य कारण था।

अगर हम दुसरे स्वरुप पर ध्यान दे, जो पूरी तरह से परिवार के सदस्यों द्वारा किया जाता है, ऐसे में 'इज़्ज़त' के नुकसान की धारणा केंद्र बिन्दु बन जाती है। ऊपर बताये गए मामले ऐसे कुछ ही हैं, ऐसे कई सारे मामले हर रोज़ अख़बारों में छपते हैं जहाँ युवा शादी कर लेने के कई सालों बाद भी मार दिए जाते हैं। मेरे पीएचडी के शोध के समय मैंने ये पाया की पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों से, लगभग हर दिन ऐसी हत्याओं की खबरें प्रकट होती हैं। ऐसे मामलों पर अपने शोध के दौरान, मुझे कई मामलों का पता चला था, जो खबर समाचार पत्रों में छपी थी, जहां माता-पिता या रिश्तेदारों ने लड़की या लड़की और लड़के दोनों को उनके विवाह के कई सालों के बाद मार दिया था। ऐसे मामलों में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, हत्या का प्राथमिक कारण या तो सामुदायिक सदस्यों से निरंतर उलाहना या 'इज़्ज़त' के चले जाने की भावना शामिल थी।

सामान्य कल्पना में, इज़्ज़त के नाम पर होने वाले अपराध ज्यादातर घर से भागने और विवाह करने के साथ जुड़े होते हैं। लेकिन हालिया समय के कई मामलों से यह मालूम पड़ता है कि महिला यौनिकता को नियंत्रित करने की चिंता हमारे समाज में बहुत गहरी हो गई है। अख़बारों में आये ऐसे कई मामलों से पता चलता है की इज़्ज़त के नाम पर होने वाले अपराध के कई मामलों में अब स्कूल जाने वाले किशोरों के साथ भी हिंसा हो रही है। ऐसे मामलों में लड़की या लड़के को उनके परिवार के सदस्यों ने मार दिया था क्योंकि वे फोन पर एक दूसरे से बात कर रहे थे। पंजाब और हरयाणा से पिछले दस साल में आये ऐसे अपराधों पर नज़र फेरने से ऐसे मामले ज़्यादा सामने आते दिख रहे हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि भारतीय संदर्भ में, इज़्ज़त के नाम होने वाले अपराध अब सिर्फ पसंद से विवाह और प्रेम संबंधों तक सीमित नहीं हैं। युवतियों का अपने उम्र के लड़के से स्कूल में , फ़ोन पर या गली मोहल्ले में बात करना भी इज़्ज़त पर चोट समझा जाने लगा है। किशोरों की अपनी यौनिकता के बारे में जिज्ञासा और उससे इज़्ज़त की धारणा का जुड़ा होना उन्हें, इस तरह की हिंसा के आगे कमज़ोर बनाता जा रहा है।

निष्कर्ष : इस मुद्दे को आगे ले जाते हुए हमे यह भी देखने की ज़रूरत है की इज़्ज़त अपराध और युवा पीढ़ी की यौनिकता को नियंत्रित करने की कई अन्य प्रक्रियाएं अब केवल परिवारों और समुदायों तक ही सीमित नहीं हैं। लव जिहाद पर बहस, रोमियो स्क्वाड हमारे सामने कुछ बिंदु हैं जो युवा पीढ़ी की यौनिकता को नियंत्रित करने के लिए चिंताओं के उदय को दर्शाता है। हाल के समय में अंतर-धार्मिक विवाहों पर सांप्रदायिक रूप से बयान दिए गए हैं जिनसे एक दहशत का माहौल बनाया जा रहा है। ऐसे

दहशत के माहौल में, अंतर-धार्मिक विवाहों के कई जोड़ों को अपने मत व्यक्त करना और उनके विकल्पों पर जोर देना मुश्किल हो रहा है। केरल से हादिया केस हमारे सामने एक ऐसा उदाहरण है। दो व्यस्क युवाओं के अपनी मर्ज़ी से शादी को किस तरह से आपराधिक रूप दिया गया है, वह हमारे सामने है। हमारे युवा हमारा भविष्य हैं, यह बात हम सब समझते हैं। हम सबको यह मिलकर सोचने की जरूरत है की किस प्रकार से एक तरफ तो बाज़ार युवाओं को एक स्वतंत्र नागरिक जो अपनी मर्जी से हर कुछ खरीद सकता है, की तरह भरोसा दिला रहा है और वही दूसरी ओर जब आज के युवा अपनी मर्जी से शादी करना या सिर्फ किसी से बात करने की कोशिश करते हैं तो उन्हें तरह-तरह के हिंसा का शिकार होना पड़ता है। हमारे युवा इस दवंद से जल्दी उबरते नहीं दिखते।

संदर्भ सूची-

1. वेलशमन लींन और होसैन सारा "हॉनर क्राइम , पैरडाइम एण्ड वाइअलन्स अगैन्स्ट वुमन", लंदन जेड बुक्स, 2005
2. नारायण बदरी, "हॉनर, वाइअलन्स एण्ड कॉफलिकटिंग नेरटिव : अ स्टडी ऑफ मिथ एण्ड रीऐलिटी" न्यू ज़ीलैंड जर्नल ऑफ एशियन स्टडीस 5 , 1 (जून 2003) 5-23
3. रमण, रानी रोहिणी, "हॉनर क्राइम्स इन इंडिया : अ रिव्यू" एम फिल शोधकार्य सी एस एम सी एच , JNU 2010

कृषि संकट, जलवायु परिवर्तन और महिलाएँ

शर्मिष्ठा दास

सहायक प्रोफेसर, समाज-शास्त्र विभाग,तेजपुर विश्वविद्यालय

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 41 – 47 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

शोध-सार

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन के गहरे प्रभाव पूरे विश्व के पर्यावरण पर परिलक्षित हो रहा है। जो देश प्रकृति संसाधन से समृद्ध रहे हैं उनमें इस परिवर्तनों के अनेक नकारात्मक परिणाम सामने आए हैं। इन परिणामों के मध्य समाज के हाशियाकृत समूहों को लगातार प्रभावित किया है । खेती किसानी में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रहीं है लेकिन सामाजिक भेदभाव के कारण उनकी भूमिका को रेखांकित नहीं किया गया। यह आलेख भारत के असम राज्य में बदलती कृषि अर्थव्यवस्था और जलवायु परिवर्तन के व्यापक संदर्भ में कैबत्रा महिलाओं का पता लगाने की कोशिश करता है। इस आलेख में ब्रह्मपुत्र नदी की गति की अनिश्चितता और राज्य भर में फैली नदी की सहायक नदियों पर इसके प्रभाव के साथ-साथ समुदाय की बदलती रोजमर्रा की आजीविका प्रथाओं और विशेष रूप से महिलाओं पर इसके प्रभाव पर विचार किया जाएगा । इस प्रकार यह आलेख असम के नागांव जिले पर केंद्रित है और कोलोंग नदी के तट पर स्थित एक अनुसूचित जाति के गांव पर आधारित है।

बीज शब्द: जलवायु संकट , वित्तीय सहायता, नवउदारवाद, भूमि जोत

मूल– आलेख: जलवायु परिवर्तन, कृषि संकट और दुनिया भर की अर्थव्यवस्थाओं के बीच एक आंतरिक संबंध है। इस तरह के बदलावों ने पुरुषों और महिलाओं दोनों को प्रभावित किया है। भारतीय संदर्भ में, कृषि अर्थव्यवस्था में भूमि पर असंगत नियंत्रण और भूमि वितरण जैसी स्पष्ट बाधाओं को स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधारों के चुनौतीपूर्ण कार्यों द्वारा संबोधित किया गया है। हालाँकि इसके बाद कृषि संकटों की एक और श्रृंखला आई जो नवउदारवादी बाज़ार और भारतीय किसानों के बाज़ार अर्थव्यवस्था में एकीकरण के साथ आई। इसने कृषि मॉडल में और अधिक पदानुक्रम पैदा किया क्योंकि अमीर किसान उन गरीब किसानों की कीमत पर बाजार में भाग लेते हुए अपने नियंत्रण और संपत्ति का विस्तार कर सकते थे जो वित्तीय सहायता और भूमि की कमी के कारण बाजार में भाग नहीं ले सकते थे। यह जलवायु परिवर्तन के रंगों से प्रकट हुआ जिसने गरीब और सीमांत किसानों को वर्षा जल जैसी बुनियादी प्राकृतिक सिंचाई सुविधाओं से वंचित कर दिया।

नदियों के बदलते मार्ग, अत्यधिक गाद और बाढ़ ने किसानों को कृषि पद्धतियों से दूर कर दिया है। इसका मुकाबला करने के लिए पुरुष, समस्या को अलग तरीके से देखते हैं (कृषि से दूर जाकर अन्य गैर-कृषि गतिविधियों का सहारा लेते हैं) महिलाएं इससे निपटने के लिए विभिन्न तंत्र अपनाती हैं। इसने अंततः ग्रामीण इलाकों के सामाजिक जीवन को बदल दिया, किसानों ने जमीन और मवेशी बेचना शुरू कर दिया। अधिकांश महिलाओं को अपने परिवार में लापता पुरुष सदस्यों के नुकसान की भरपाई करनी होगी। अध्ययन (डी हैन्स, 2002) से संकेत मिलता है कि यह भारत के किसी विशिष्ट राज्य के लिए अद्वितीय नहीं है, बल्कि एक अखिल भारतीय घटना है जहां महिलाओं को उन पुरुषों के लिए भरने के लिए मजबूर किया जाता है जो अपने घरों से गायब थे। महिलाओं के लिए, यह आसान नहीं था क्योंकि उन्हें कभी भी भूमि पर कोई अधिकार नहीं था या न ही उन्होंने पूरी ताकत से कृषि गतिविधियों में भाग लिया था। महिलाओं को हमेशा सामाजिक संरचना के अंतिम छोर पर रखा जाता था, आजीविका संसाधनों तक उनकी पहुंच और दावों की कमी ने उन्हें और आगे धकेल दिया और संसाधनों पर उनके अधिकारों को खतरे में डाल दिया। महिलाओं ने ऐसी नौकरियाँ अपनानी शुरू कर दीं जिन्हें पहले पुरुष-केंद्रित माना जाता था। विद्वानों (पटनियाक एट अल, 2018) ने भी 'अधिक महिलाओं को कृषि गतिविधियों में शामिल करने के साथ कृषि के नारीकरण' के लिए तर्क दिया है। जबकि महिलाएं आगे आ रही हैं और आर्थिक भूमिका निभा रही हैं, उनके लिए भूमि जोत की कमी महत्वपूर्ण रही है, और दस्तावेजी सबूतों ने कृषि ऋण के रूप में कृषि का समर्थन करने के लिए राज्य द्वारा तैयार किए गए समर्थन तंत्र तक पहुंचने के मामले में उन्हें पंगु बना दिया है। इस प्रकार, जबकि महिलाएँ कृषि में लगी हुई थीं, उन्हें कभी भी किसान नहीं माना गया।

बीना अग्रवाल (2010) कृषि को प्रभावित करने वाली दो प्रक्रियाओं की ओर इशारा करती हैं। कृषि की प्रक्रियाओं में लगे लोगों की एक निश्चित श्रेणी के बीच असंतोष और संकट और दूसरी श्रेणी कृषि भूमि को वाणिज्यिक गैर-कृषि प्रक्रियाओं के लिए बेदखल करना है। कृषि अर्थव्यवस्था के संकट को कर्ज़, फसल की विफलता और खराब उपज के कारण आत्महत्या के रूप में देखा जा रहा है। हालाँकि, भारत में कृषि संकट केवल कर्ज़, उपज और आत्महत्या के अर्थशास्त्र से परे है। जलवायु परिवर्तन ने भारतीय कृषि में पहले से मौजूद सामाजिक-आर्थिक स्तरीकरण परतों में जबरदस्त वृद्धि की है। यह पेपर कृषि मजदूरों की पहली श्रेणी पर केंद्रित है जो जलवायु-प्रेरित कृषि परिवर्तन के कार्य से असंतुष्ट और व्यथित हैं।

जबकि जलवायु परिवर्तन सार्वभौमिक रहा है। इसके प्रभावों ने न केवल प्रकृति की जटिलताओं को दूर किया है, बल्कि अधिक सामाजिक-आर्थिक असमानताएं पैदा करके बड़े समुदाय को भी प्रभावित किया है। इस प्रकार, जहां एक ओर इसने सूखे, अनियमित वर्षा और खाद्य सुरक्षा जैसी आपदाओं से सभी को प्रभावित किया है, वहीं दूसरी ओर, इसका व्यक्ति विशेष पर जाति और लिंग के संदर्भ में अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। भारत मानव विकास सर्वेक्षण 2 (आईएचडीएस 2) जैसे सर्वेक्षणों से पता चलता है कि महिलाएं पीने का पानी लाने के साथ-साथ प्रकृति के साथ समय बिताने के अन्य तरीकों में पुरुषों की तुलना में दोगुना समय खर्च करती हैं। महिलाएं भी पुरुषों की तुलना में कृषि क्षेत्रों में अधिक समय बिताती हैं क्योंकि वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से

खेतों में लगी हुई हैं। फिर भी महिलाओं का संसाधनों पर कम नियंत्रण है और निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी शक्तियां सीमित हैं (जलवायु परिवर्तन और महिलाएं: एक संकट के भीतर एक संकट । ORF (orfonl|ne.org)

जाति लिंग और जलवायु परिवर्तन की इस अनिश्चितता को बढ़ाती है। एक अवधारणा के रूप में यह प्रत्येक भारतीय के सांसारिक जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालाँकि व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह शब्द भारतीय मूल का नहीं है, लेकिन भारतीय के रोजमर्रा के जीवन में इसकी उपस्थिति पर्याप्त है। जाति का मूल सिद्धांत समाज को विभिन्न परतों में व्यवस्थित करता है और लोगों को एक पदानुक्रम के अनुसार एक-दूसरे के बराबर रखता है जो पारंपरिक व्यवसायों की तुलना में शुद्धता और प्रदूषण की धारणाओं पर आधारित है। इसी सिद्धांत के आधार पर, भारत में लोगों को चार वर्णों में विभाजित किया गया है, और पांचवां समूह जो चतुर्वर्ण (चार गुना वर्ण योजना) के बाहर है, अछूत हैं। इस समूह में बड़े पैमाने पर वे लोग शामिल हैं जो अपने से ऊपर के समूहों की सफाई के कार्यों में संलग्न हैं। हालाँकि इस समूह की स्थिति और कहानी समय के साथ संवैधानिक संशोधनों और सकारात्मक भेदभाव पर विभिन्न नीतियों के साथ बदल गई। रोजमर्रा के जीवन में यह अलगाव की प्रकिया अनजाने में चलती रही। जिसके कारण राज्य की नीतिया संवैधानिक अधिकारों को लागू करने में असफल रही।

इस पृष्ठभूमि में, वर्तमान अध्ययन असम के कैबर्ता पर केंद्रित है जो राज्य में पाए जाने वाले अनुसूचित जाति (एससी) के 16 उपसमूहों में से एक का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत में अनुसूचित जाति समूह कुल जनसंख्या का 16.6% है (2011 की जनगणना के अनुसार)। जिसमें से असम की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति का कुल प्रतिनिधित्व 7.15 (2011 की जनगणना के अनुसार) है। परंपरागत रूप से यह समूह मछली पकड़ने और कृषि दोनों कार्यों में लगा हुआ है। इसने समूह को जलुवा (मछली पकड़ने) और हलुवा (कृषि) कैबर्ता में वर्गीकृत किया। यह अध्ययन कृषि अर्थव्यवस्था, संकट, जलवायु परिवर्तन और सामान्य रूप से समुदाय की पारंपरिक आजीविका पर इसके प्रभाव और महिलाओं पर इसके प्रभाव पर केंद्रित है। इस मुद्दे को संबोधित करते समय, दो अलग-अलग स्तरों पर महिलाओं की बातचीत को उठाया गया: ।. पारंपरिक कृषि अर्थव्यवस्था में उनकी भागीदारी और बातचीत, ॥. घर के अंदर और बाहर उसकी स्थिति.

प्रविधि : साक्षात्कार और फोकस समूह चर्चा पेपर के लिए डेटा संग्रह के प्राथमिक तरीके थे। प्रारंभिक उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्यपूर्ण नमूने के आधार पर किया गया था। जबकि महिलाएं प्राथमिक उत्तरदाता थीं, पुरुषों का भी साक्षात्कार लिया गया क्योंकि रोजमर्रा की आजीविका प्रथाएं विभिन्न स्तरों पर पुरुषों और महिलाओं की बातचीत के बारे में भी थीं। लेखिका तीन महिलाओं के बीच रोजमर्रा की बातचीत और अर्थ-निर्माण को समझने के लिए नारीवादी अनुसंधान पद्धति के ढांचे का व्यापक रूप से उपयोग करती है।

असम की कृषि अर्थव्यवस्था में महिलाएँ : भागीदारी और बातचीत

भारत भर में महिलाओं ने कृषि अर्थव्यवस्था में एक युगांतकारी लेकिन बहुत संवेदनशील स्थान साझा किया। हालाँकि, कृषि अर्थव्यवस्था के बड़े पैमाने पर उनके योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, लेकिन घर के रोजमर्रा के मामलों में उनकी रोजमर्रा की बातचीत और स्थिति विवादास्पद बनी हुई है। कैबार्ट्टा महिलाएं, भारत और दक्षिण एशिया की अधिकांश महिलाओं की तरह, कृषि पारिवारिक खेतों में सक्रिय भागीदार हैं। पारिवारिक खेत ज्यादातर अपने सदस्यों के श्रम से टिके रहते हैं और हाल के वर्षों में प्रौद्योगिकी के हस्तक्षेप ने कृषि के काम को आसान बना दिया है, ट्रैक्टरों के साथ मोटर चालित हल की शुरूआत ने खेत में शारीरिक श्रम की मात्रा को कम कर दिया है। हालाँकि, अधिकांश समुदायों में अपने समकक्षों की तरह कैबार्ट्टा महिलाओं के पास जमीन पर कोई कब्ज़ा नहीं है। समुदाय की महिलाएँ परिवार के सदस्यों की पोषण संबंधी और भावनात्मक जरूरतों की देखभाल के साथ-साथ आजीविका के लिए पारंपरिक कृषि अर्थव्यवस्थाओं में लगी हुई थीं। अध्ययनाधीन गांव एक राजस्व गांव नहीं है, बल्कि लगभग 70 घरों वाली कैबर्टस की एक बस्ती है। अध्ययन में 3 महिलाओं के रोजमर्रा के जीवन पर ध्यान केंद्रित किया गया और उनके माध्यम से गांव की बड़ी कृषि अर्थव्यवस्था और जलवायु परिवर्तन के साथ हुए बदलावों का पता लगाने की कोशिश की गई।

घर के भीतर

एक 52 वर्षीय महिला, एक बेटे की मां, जिसकी उम्र लगभग 20 वर्ष के आसपास है और वह एक राष्ट्रीयकृत बैंक में कार्यरत है, कृषि क्षेत्रों से जुड़ी अपनी कहानियां लेकर आती है। उसकी शादी 27 साल पहले हुई थी और वह लगभग 20 किमी दूर एक छोटी सी बस्ती से गाँव में आई थी। अपनी शादी के बाद से वह हमेशा खेती में लगी रहती थीं। उनसे कभी नहीं पूछा गया कि क्या वह खेतों में भाग लेने की इच्छुक हैं, क्योंकि यह समझा जाता था कि महिलाएं पारिवारिक श्रम के हिस्से के रूप में अनिवार्य रूप से अपने पति के खेतों में शामिल होती हैं। उनके पति जिनकी उम्र 70 वर्ष से अधिक है, अब खेती करना जारी रखते हैं। उनके पास जीविका के लिए मुश्किल से ही पर्याप्त ज़मीन थी और इसलिए उन्हें कृषि भूमि पर निर्भर रहना पड़ता था जो उनके कुछ रिश्तेदारों की थी। उन्होंने अधि (बटाईदारी का एक स्थानीय रूप) का अभ्यास किया, जहां वे अपने रिश्तेदारों से पट्टे पर जमीन लेते थे और चक्र के अंत में एक विशेष प्रतिशत वापस कर देते थे। आम तौर पर कृषि चक्र बहुत अलग होता था, इसमें रबी और ख़रीफ़ के पैटर्न का पालन किया जाता था, रोजमर्रा की शब्दावली में गर्मी और सर्दियों की फ़सलों का। जबकि गर्मियों की फसलें रसदार थीं और मुख्य भोजन की पूर्ति के लिए झुकी हुई थीं, वहीं सर्दियों की फसलें अर्थव्यवस्था की ओर झुकी हुई थीं। सरसों, दालें आदि जैसी नकदी फसलों की ओर अधिक उन्मुख खेती रही है। जैसे-जैसे गांव कोलोंग नदी के किनारे विकसित हुए, तट उपजाऊ भूमि बन गए।

उसने अपने जीवन में जो किया उससे वह खुश है और संतुष्ट है क्योंकि वह और तीन लोगों का परिवार अब व्यवस्थित हो गए हैं। लेकिन अक्सर गांव के खुशहाल और भरपूर दिन याद आते हैं, पीली सरसों के बागान अक्सर उसकी यादों का हिस्सा होते

थे, गुड़ की खुशबू भी उसकी जवानी से जुड़ी होती थी। गाँव की 58 वर्षीय महिला दास अपने रोजमर्रा के जीवन में कृषि की उपस्थिति को स्वीकार करके खुश थीं। शादी के समय उनके और उनके पति के नाम पर कुल 3 बीघे ज़मीन थी। उनके पति एक प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक थे और इसलिए, खेतों में नियमित निरीक्षण के अलावा, उनके पास अपनी कृषि भूमि पर सक्रिय रूप से संलग्न होने के लिए ज्यादा समय नहीं था। वह अक्सर अपनी गर्मी की छुट्टियों और स्कूल की छुट्टियों का उपयोग फसल चक्र की योजना बनाने के लिए करते थे। हालाँकि उन्होंने अपने पति की मदद की और सहायता की, लेकिन ज्यादातर उन्होंने जमीन को उन लोगों को पट्टे पर देने का अभ्यास किया, जिन्हें आर्थिक रूप से पैसे की जरूरत थी। जब से उसकी शादी गाँव में हुई थी, तब से वह सुबह जल्दी उठना और अपने पति और परिवार के अन्य सदस्यों के लिए चावल आधारित भोजन पकाने की उसी दिनचर्या का पालन करती थी, जैसे वह अपने स्कूल के लिए जल्दी निकल जाता था। वह बताती है कि अब उसके पति स्कूल से सेवानिवृत्त हो गए हैं और सुबह जल्दी दिन शुरू करने की कोई जल्दी नहीं है, चावल आधारित भोजन तैयार करने और सुबह उसे खाने की रस्म को पूरा किए बिना वह अधूरा महसूस करती है। रसोई संभालने के अलावा उनके परिवार में मवेशी भी थे जिनकी वह लंबे समय तक देखभाल करती थीं। उसने महसूस किया

गांव की एक 27 वर्षीय महिला अपने रोजमर्रा के अनुभव बताती है, उसके दिन की शुरुआत सुबह होते ही होती है और वह स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने के लिए ऊंची जाति के पड़ोसी के घर (जिसमें नवीनतम शुद्धिकरण प्रणाली है) से पीने योग्य पानी इकट्ठा करती है, इसके बाद यह किया जाता है सात लोगों के परिवार के लिए बुनियादी भोजन पकाकर। चूँकि उसके परिवार के सभी सदस्य सुबह-सुबह घर से निकल जाते हैं और उसके बच्चे स्कूल जाते हैं और उसका पति धान के खेतों में जाता है (जो उसके परिवार ने एक रिश्तेदार, जो अनुपस्थित जमींदार है, से बटाईदार अधि के रूप में पट्टे पर लिया था)। उसे उन सभी के लिए पौष्टिक भोजन का सहारा लेना चाहिए, वे आम तौर पर चावल, दाल और आमतौर पर आलू या बैंगन, या टमाटर से बना मैश पिटिका का भोजन पसंद करते हैं। इसके बाद उसके दैनिक काम होते हैं जिनमें कपड़े धोना, बर्तन साफ करना और अपने पिछवाड़े में बकरियों और बत्तखों की देखभाल करना शामिल है। उन्हें याद है कि बचपन में वह अपनी मां के साथ कपड़े धोने के लिए नदी पर जाती थीं, लेकिन समय के साथ ऐसी प्रथाएं लगभग बेमानी हो गई हैं क्योंकि अब नदी को पट्टे पर दे दिया गया है और ऐसी प्रथाओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। इसके अलावा, गाँव में बोरवेलों के उगने से कपड़े धोने जैसी सामुदायिक प्रथाओं की प्रक्रिया भी रुक गई है। उसे गर्म धूप वाले दिनों में अपनी माँ के साथ जाना बहुत अच्छे से याद है जब उसका स्कूल गर्मियों की छुट्टियों के कारण बंद हो जाता था और वह गाँव के आम जलाशय में कपड़े और अन्य बर्तन साफ़ करने में अपनी माँ की मदद करती थी। ईंट और गारे की दीवारों के भीतर और बाहर, दोनों जगह महिलाओं की दुनिया घूम रही है,

घर से बाहर की महिलाएं:

यहां जिन तीन महिलाओं का साक्षात्कार लिया गया है, वे गांव की कृषि अर्थव्यवस्था में भाग लेने वाली कई कैबर्त्ता महिलाओं की आवाज का प्रतिनिधित्व करती हैं, फिर भी जब कृषि के बाहर के क्षेत्रों में उनकी भागीदारी की बात आती है तो उनकी दुनिया अनिश्चित हो जाती है। महिलाएं पारंपरिक रूप से गांवों के कृषि चक्र का हिस्सा रही हैं, कृषि के अलावा वे मछली पकड़ने और घर के लिए कपड़े बुनने जैसी अन्य आजीविका पैदा करने वाली गतिविधियों में भी लगी हुई थीं। जबकि, बुनाई की प्रथाएं आज भी जारी हैं, मछली पकड़ने की प्रथाएं अचानक गायब हो गई हैं।

उत्तरदाताओं में से एक ने बताया कि गाँव की युवा लड़कियों के पास मछली पकड़ने का कौशल नहीं है, उन्हें यह न केवल शर्मनाक लगता है, बल्कि गाँव में इन महिलाओं के लिए मछली पकड़ने के लिए सामान्य जल निकायों का भी अभाव है, वे सभी सूख गए हैं। दास 2021 जलवायु परिवर्तन और गपशप के अंतर्संबंध के बारे में बात करता है। वह इस बात पर प्रकाश डालती हैं कि कैसे जल निकायों के सूखने से न केवल उनकी आजीविका प्रथाओं और जीवन कौशल में शून्यता पैदा हुई है, बल्कि इन महिलाओं के बीच रोजमर्रा के अर्थ निर्माण और दोस्ती पर भी असर पड़ा है।

27 वर्षीय महिला प्रतिवादी बताती है कि गाँव में गठित समूह (स्वयं सहायता समूह) महिलाओं के लिए गाँव में एक प्रकार का आर्थिक परिवर्तन लाने के मामले में बहुत महत्वपूर्ण रहे हैं। महिलाएँ अब 10-20 महिलाओं के छोटे समूह बनाती हैं और हर हफ्ते पैसे जमा करती हैं, योगदान नाममात्र का होता है और इसलिए, बड़े पैमाने पर महिलाओं के लिए कम बोझ होता है, एक बार पर्याप्त राशि पहुँच जाने के बाद ये महिलाएँ विभिन्न सदस्यों को ऋण भी प्रदान करती हैं (दोनों भीतर से) और समूह के बाहर) नाममात्र ब्याज दरों पर। गाँव की कुछ महिलाओं ने आजीविका सृजन गतिविधियों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने मुर्गी पालन और करघे खरीदना शुरू कर दिया है। हालाँकि, मुर्गीपालन एक आसान रास्ता था लेकिन करघे का रख-रखाव थोड़ा थकाऊ और महंगा हो गया।

सभी तीन उत्तरदाताओं ने जल निकासी और थका देने वाली कृषि पद्धतियों के बारे में दुख व्यक्त किया, जिसने गांव के युवाओं को अन्य वैकल्पिक आजीविका की तलाश में बाहर जाने के लिए मजबूर किया (दास, 2018)। पुरुष अनौपचारिक अर्थव्यवस्थाओं में काम करने के लिए बड़े शहरों में चले गए और महिलाओं को नुकसान उठाना पड़ा। जलस्रोतों के सूखने और अनियमित वर्षा ने ग्रामीणों की कृषि संबंधी निराशा को और बढ़ा दिया है। गांव में सिंचाई का एकमात्र स्रोत कोलोंग नदी थी, जिसके कारण लंबे समय तक सूखा पड़ा रहा

मानसून चक्र में बदलाव का गाँव की समग्र कृषि अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा है। जैसा कि उत्तरदाताओं ने पहले उल्लेख किया था कि महिलाएं अपने दैनिक कार्यों के लिए लगातार जल निकायों में लगी रहती थीं, जैसे कि कपड़े धोना, अपने भोजन के लिए मछलियाँ पकड़ना, अब उन्हें जलवायु परिवर्तन समस्याग्रस्त लगता है क्योंकि उनकी रोजमर्रा की गतिविधियाँ प्रभावित हो रही हैं। दास 2018 में बताया गया है कि हातिमुरा में कोलोंग नदी में रुकावट, जो लगभग 54 किलोमीटर की दूरी पर है,

ने कृषि संबंधी निराशा को और बढ़ा दिया है। मानसून के दौरान नदी नगांव शहर में जिला मुख्यालय के निचले इलाकों में तबाही मचाती है, जिसके बाद नागरिक अधिकारियों ने नदी के मुहाने पर ताला लगा दिया है। इससे न केवल नदी और उससे जुड़ी नदियों का प्रवाह प्रभावित हुआ, बल्कि नदी पर निर्भर लोगों की रोजमर्रा की कृषि अर्थव्यवस्था भी प्रभावित हुई है। इससे गांव का कृषि इतिहास पूरी तरह से बदल गया है। यह गाँव गन्ने और सरसों के बागानों से समृद्ध था। जबकि सरसों गांव में सर्दियों की पसंदीदा फसलों में से एक बनी हुई है, गन्ने की खेती में भारी गिरावट आई है। ये वृक्षारोपण अत्यधिक जल गहन हैं और इनमें बहुत अधिक देखभाल और श्रम की आवश्यकता होती है। कृषि में रुचि की कमी, गाँव से युवाओं का पलायन और गाँव के सामान्य जल निकायों के सिकुड़ने से कृषि की तस्वीर खराब हो गई है। हालाँकि यह गाँव के पुरुषों तक ही सीमित नहीं है बल्कि गाँव की महिलाओं को भी भारी अनिश्चितता से गुजरना पड़ा।

महिलाएँ गाँव की विभिन्न आर्थिक एवं गैर आर्थिक गतिविधियों में भाग लेकर घर के आर्थिक लेन-देन में होने वाले नुकसान की भरपाई कर रही थीं। अपने पतियों से अलगाव ने उनके जीवन में एक तरह की अनिश्चितता भी पैदा कर दी है, अपने पति को खोने का डर भावनात्मक रूप से चल रहे संकट को और बढ़ा देता है।

निष्कर्ष : जबकि जलवायु परिवर्तन के मुद्दों ने पुरुषों और महिलाओं के जीवन को समान रूप से प्रभावित किया है। जब यह महिलाओं के जीवन पर पड़ता है तो इसका दूरगामी प्रभाव पड़ता है। अनियमित कृषि चक्र, वर्षा, ग्रामीणों के आर्थिक जीवन में गिरावट इसके कुछ प्रत्यक्ष परिणाम हैं। ग्रामीणों को जो छिपी हुई लागत उठानी पड़ती है, उसमें भावनात्मक असुरक्षाएं, मित्रता और कौशल की हानि शामिल है। इस तरह के मुद्दों का मुकाबला करने के लिए महिलाएं हिम्मत का विकल्प लेकर आई हैं, लेकिन इसकी स्थिरता को गंभीरता से देखा जाना चाहिए। ऐसी परिस्थितियों में राज्य की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है, जो गांवों में गैर कृषि गतिविधियों के प्रति युवाओं में जागरूकता पैदा करने में मदद कर सकता है। चूंकि अधिकांश भारतीय किसान महिलाएं हैं, इसलिए स्वामित्व और अधिकार के अपने मुद्दों को संबोधित करने से एक सार्थक समाधान तक पहुंचने में मदद मिलेगी। आजीविका सृजन पर महिलाओं की सहकारिता, प्रशिक्षण और जागरूकता उन्हें बातचीत करने और अपने विचार रखने के लिए बेहतर स्थिति में ला सकती है।

संदर्भ सूची-

1. Pattnaik, Itishree, and Kuntala Lahiri-Dutt. "The Feminization of Agriculture or the Feminization of Agrarian Distress? Tracking the Trajectory of Women in Agriculture in India." Agriculture and Human Values, vol. 34, no. 1, 2017, pp. 138–155.
2. Agarwal, Bina. "Rethinking Agricultural Production Collectivities." Economic and Political Weekly, vol. 45, no. 9, 2010, pp. 64–78.

3. "Climate Change and Women: A Crisis within a Crisis." Observer Research Foundation, www.orfonline.org. Accessed 6 Apr. 2025.
4. Das, Sarmistha. “How Climate Change Killed Gossip.” India Development Review, https://idronline.org/contributor/sarmistha-das/. Accessed 6 Apr. 2025.
5. Das, Sarmistha. "From Agriculture to Non-Farm: Agrarian Change among the Scheduled Castes of Central Assam." Social Change for Development, vol. 15, July 2018, pp. 18–34.

पूर्वोत्तर भारत के ‘आपातानी जनजाति’ का सामाजिक परिप्रेक्ष्य: एक अवलोकन

आलिया जेसमिना

शोधार्थी , हिंदी विभाग , तेजपुर विश्वविद्यालय, असम

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

शोध-सार

यह आलेख उत्तर-पूर्व भारत क्षेत्र के संदर्भ में आपतानी जनजाति पर ध्यान केंद्रित करते हुए भारत में जनजातीय संस्कृतियों की समृद्ध परम्परा का अध्ययन करता है। अरुणाचल प्रदेश की जैरोन घाटी में बसी आपतानी जनजाति अपनी लोकतांत्रिक प्रणाली, सांस्कृतिक परंपराओं और पारिस्थितिक प्रथाओं के साथ एक अद्वितीय और विशिष्ट समूह के रूप में सामने आती है। इसमें आपतानी जनजाति के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है | अपनी परंपराओं को संरक्षित करने के लिए आपतानी जनजाति कृषि संस्कृति व प्राकृतिक विरासत को अपनाती है, जहां वे आधुनिक मशीनरी और यांत्रिकीकरण को छोड़कर अपने श्रम पर निर्भर रहते हैं। आपतानी लोगों के त्योहार उनकी जीवंत संस्कृति की अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करते हैं, जिसमें हथकरघा कौशल, बांस शिल्प और प्रकृति से गहरा संबंध शामिल है। इसमें आपतानी जनजाति के रीति-रिवाजों, विशेष रूप से सांस्कृतिक परंपरा पर प्रकाश डाला गया है, जो उनकी आध्यात्मिक मान्यताओं और पौराणिक कहानियों को दर्शाता है। बलि चढ़ाए गए जानवर के सिर को कब्र पर लटकाने और दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के लिए आत्माओं को जिम्मेदार ठहराने की प्रथा जनजाति के सदियों पुराने परम्परा को रेखांकित करती है। यह आलेख विशेष रूप से साहित्य व सांस्कृतिक क्षेत्र में आपतानी जनजाति के सामने आने वाली चुनौतियों पर भी चर्चा करता है। आपातानी जनजाति के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य उनके अनूठे रीति-रिवाजों, परंपराओं और मान्यताओं में गहराई से निहित है | आपातानी लोगों की एक समृद्ध मौखिक परंपरा भी है, जिसमें मिथक, किंवदंतियाँ और लोक कथाएँ पीढ़ियों से चली आ रही हैं। ये कहानियाँ अक्सर उनके विश्वदृष्टिकोण, प्रकृति में विश्वास और प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या को दर्शाती हैं। इसके अतिरिक्त, पारंपरिक गीत, नृत्य और अनुष्ठान आपातानी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के अभिन्न अंग हैं, जो संचार, उत्सव और आध्यात्मिक संबंध के साधन के रूप में कार्य करते हैं। कुल मिलाकर, आपातानी जनजाति के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की विशेषता उनकी भूमि से गहरा संबंध, एक समृद्ध मौखिक परंपरा, सामाजिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के विशिष्ट रूप हैं। आधुनिक प्रभावों और परिवर्तनों के बावजूद, आपातानी लोग भारत की सांस्कृतिक विविधता की समृद्ध आयाम में योगदान करते हुए, अपनी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित कर रहे हैं |

बीज शब्द: उत्तर-पूर्व भारत, आपतानी, जनजाति, पौराणिक, संरक्षण, आदिवासी, आधुनिकीकरण, अंधविश्वास, पारिस्थितिक

मूल– आलेख :विभिन्न समुदायों , कौमों , और संस्कृतियों का देश भारत न केवल अनेकता में एकता बल्कि भिन्न -भिन्न प्रकार के जाति -जनजातियों का सहसंबंधो का महासागर है। इसी कारण भारत को विभिन्न जाति संस्कृति व सभ्यता का मिलनभूमि कहा जाता है। इस मिलनभूमि में सदियों से ही जनजाति समाज अपना जीवन गुजर करता हुआ आ रहा है। इन जनजातियों के कारण ही भारत की कला एवं संस्कृतियों में अधिक से अधिक पीढ़ी दर पीढ़ी नए नए विकास व नित्य नवीन रूपों से परिचित होता हुआ नजर आती हैं। हमेशा से ही कला और संस्कृति के संरक्षक के संदर्भ में भारत के विभिन्न जनजातियों की भूमिका व योगदान सराहनीय तथा अतुलनीय रहा है , जिसने अपनी परंपरा और संस्कृतियों के साथ ही रीति-रिवाजों का और जल - जंगल –जमीन का भी संरक्षण करते आये हैं | जनजातीय समुदायों की सामाजिक संरचना उतनी ही प्रकार के होते हैं जिनते कि जनजातीय समुदाय। हर जनजातीय समुदाय का अपना बोली व भाषा- संस्कृति होती है। परन्तु हम सब के मन में यह प्रश्न उठता है कि - जनजाति कौन है , किसे कहते हैं , कहा से आया है , इनके लक्षण क्या है , इनके सामाजिक संगठन एवं संस्थाएं क्या है आदि। इसे कुछ विद्वानों ने लोगों की निवास स्थलों को , भाषा तथा सामाजिक और राजनीति भिन्नता को ध्यान में रखकर परिभाषित किया है और उन्ही भिन्नता को ही

जनजाति संस्कृतियों का लक्षण भी माना है। इसके आधार पर हम जनजाति संस्कृतियों का निन्म प्रकार के विशेषताओं को देख सकते हैं , जैसे – निश्चित सामान्य भू- भाग , एकता की भावना , सामान्य बोली भाषा , अंतर्विवाही अनुगामी , रक्त संबंधो का परिपालन , रक्षा हेतु मुखिया का निर्धारण , राजनितिक संगठन , धर्म का महत्व , सामान्य नाम , संस्कृति एवं गोत्र का निर्माण आदि | इन विशेषताओं को आधार लेकर विभिन्न विद्वानों ने अलग अलग परिभाषाएं दी है , हिंदी विश्वकोश के अनुसार "आदिवासी शब्द का प्रयोग किसी क्षेत्र के मूल निवासियों के लिए किया जाना चाहिए, परंतु संसार के विभिन्न भूभागों में जहाँ अलग-अलग धाराओं में अलग-अलग क्षेत्रों से आकार लोग बसे हैं। उस विशिष्ट भाग के प्राचीनतम अथवा प्राचीन निवासियों के लिए भी इन शब्द का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ इंडियन अमरीका के आदिवासी कहे जाते हैं और प्राचीन साहित्य में दस्यु, निषद, आदि के रूप में जिन विभिन्न प्रजातीय समूहों का उल्लेख किया जाता है उसके वंशज भारत में आदिवासी माने जाते हैं।"[1] इस परिभाषाओं से जनजाति का स्वरुप तथा प्रवृत्तियाँ अपने आप से ही स्पष्ट हो जाता है। परन्तु सदियों से ही जनजाति शब्द अपने आप में एक प्रश्न के रूप में हमारे सामने खड़े उतरते हैं , क्यूंकि आदिम मूल्यों का संरक्षण आदिवासी व जनजाति संस्कृति का मुख्य ध्येय है और जबकि सभ्य या भद्र समाज एवं संस्कृति का रुझान उत्तरोत्तर आधुनिकता की और रहता है , चाहे वह विदेशों का देन ही क्यों न हो। इसके अलावा आदिवासी जानजाति संस्कृति का जुड़ाव व निकटता प्रकृति से होता है , इसके विपरीत आभिजात्य संस्कृति का निकटता आधिकांश कृत्रिम वस्तुओं से होता है । इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि भारत के जनजातीय संस्कृति व समाज को आदि काल से ही सभ्य समाज द्वारा न उनके जाति को आत्मसात कर लिया गया है न उनके संस्कृतियों को मूलधारा में शामिल होने दिया गया है। उन्हें हमेशा से ही हाशिये पर रखा गया है , चाहे वह किसी भी क्षेत्र में ही क्यों न हो।

जनजाति जिसे अंग्रेजी में 'ट्राइब' कहा जाता है , जिसका अनुवाद बाद में आदिवासी के रूप में किया गया है। आदिवासी संस्कृति भारत में राज्यों के विकास के पूर्व ही अस्तित्व में आया था परन्तु आज भी उन्ही राज्य के बाहर है। भारतीय संविधान के अनुसार जनजाति या ट्राइब को अनुसुचुचित जनजाति के रूप में संज्ञा प्रदान की गयी थी। इस परिप्रेक्ष में हम यह देख सकते हैं कि कुछ विद्वान् इसे आदिवासी तथा कुछ इसे जनजाति नामों से अभिहित करना पसंद करते थे। परन्तु ज्यादातर विद्वान् व लोगों ने इसे आदिवासी नाम देना ही ज्यादा तर्कसंगत मानता है पर ये आदिवासी जनजाति के रूप में ही विख्यात है | शिलॉग परिषद 1952 ने आदिवासी जनजाति के विशेष संदर्भ में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है कि –" शिलॉग परिषद 1952 - "एक समान भाषा का प्रयोग करनेवाले, एक ही पूर्वजों से उत्पन्न, विशिष्ट भू-प्रदेश में वास्तव करने वाले, तंत्रशास्त्रीय दृष्टि से पिछड़े हुए निरक्षर, खून के रिश्तों पर आधारित सामाजिक, राजकीय, राजनीति, आदि का प्रामाणिक पालन करने वाले एक जिन्सी गुट यानी आदिवासी जाति है।" [2] अत: आदिवासी शब्द उन लोगों के लिए लागू होता है जो आदिम सभ्यता व संस्कृतियों को बचाकर रखने वाला , जो आदि मानव के वंशज तथा आधुनिक सभ्यता से कोसी दूर जंगलों, पहाड़ों, तथा वे लोग जो आज भी शिक्षा -दीक्षा से पिछड़े हुए है। परन्तु इनके संदर्भ में एक बात निश्चित है कि भारतीय राष्ट्र की सांस्कृतिक रचना में इनका न केवल योगदान ही रहा है बल्कि

हमारे मातृभूमि की रक्षा में इनका सर्वस्व त्याग भी रहा है। भारत में आदिवासियों के आगमान तथा इनके जन्म को लेकर भी कभी कभी प्रश्न उत्थापित किया जाता है। इस संदर्भ में हम महात्मा ज्योतिबा फुले जी की एक कथ्य को यहाँ प्रकट कर सकते हैं , जैसे –

" गोंड भील क्षेत्री ये पूर्व स्वामी

पीछे आए वहीं इरानी

शूर , भील मछुआरे मारे गए रारों से

ये गए हकाले जंगलों गिरिवनों में।" [3]

इससे यह संकेत मिलता है कि आदिवासी पहले कौन थे और उन्हें वनवास कैसे मिला , इसका स्पष्ट उत्तर इन पंक्तियों के माध्यम से फुले जी ने व्यक्त किया है। जनजाति या आदिवासी कहने से हमारे मन में एक धारणा का उदय होता है कि जो लोग शिक्षा - दीक्षा, जाति - धर्म, कर्म – कांड का , आधुनिकताबोध तथा तमाम तरह की कठिनाइयों को झेलने वाला व हमेशा से ही सभ्य समाज द्वारा बानाए गये नियम कानूनों से हाशिये पर रखना अनादि काल से ही दिखाई पड़ता है। मन में यह प्रश्न उठता होगा कि ऐसा क्यों होता है , केवल जनजाति लोग या आदिवासी लोग क्यों पिछड़ेपन का शिकार होता है ? इस संदर्भ में हम हरिराम मीणा द्वारा उल्लेखित कुछ कारणों को देख सकते हैं , कोई भी मनुष्य या जाति किसी भी धर्म या जाति व गोत्र से सम्बन्ध होने पर भी उस व्यक्ति या मनुष्य जाति के विकास का सबसे बड़ा तथा महत्वपूर्ण कारक एवं माध्यम शिक्षा होता। शिक्षा ही किसी समाज का गतिशील कारक के रूप में काम करता है। इस दृष्टि से अगर आदिवासी जनजाति संस्कृतियों की शिक्षा के बारे में कहा जाय तो अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा नीतियों की तुलना में काफी अलग स्वरुप रखता है। क्योंकि ज्यादातर सामान्य अध्यापक गेर आदिवासी होने के नाते उन्ही को ध्यान में रखते हुए शिक्षा केलेंडर भी उन्ही के हिसाब से तैयार किया जाता है और इसके अलावा भी आदिवासी समाज के पर्व, उत्सव, एवं अन्य अवसरों का ध्यान नहीं रखा जाता जो उनकी सामाजिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक विरासत से गहरा सम्बन्ध रखते हो आदि तमाम तरह के कारण है जिसके परिणामस्वरूप शायद ही जनजातीय लोग आज भी हाशिये पर है। परन्तु वर्त्तमान समय में सरकार द्वारा अनेक प्रकार की योजनाएँ बानाया गया है , जिससे आदिवासी जनजातीय संस्कृति या समाज को आधुनिकता की और बढ़ने की तथा पूरे विश्व के साथ परिचित होने में एक साधन के रूप में प्राप्त हुआ है। उपरोक्त इन सभी तथ्यों का ध्यान में रखते हुए हम न केवल भारत में स्थित परन्तु दुसरे प्रान्तों की जनजातियों को भी परख सकते हैं और पूर्वोत्तर भारत में स्थित अरुणाचल प्रदेश की जनजातीय संस्कृतियों को भी उन्ही के बराबर रखा जा सकता है। जिस तरह सदियों से ही पूर्वोत्तर भारत अनेक भाषा-भाषियों का समाहार रहा है , उसी प्रकार यहाँ नाना जाति - जनजातियों का भी महासंगम तथा महामिलनभूमि के कारण यहाँ के मिट्टी में विविध कला एवं संस्कृतियों का सुगंध पाया जाता है। प्रागैतिहासिक काल से ही यहाँ के सात राज्यों में से प्राय: सभी राज्य में जनजातियाँ निवास करता हुआ आया है। उन सात राज्यों में से अगर अरुणाचल के विशेष

संदर्भ में देखा जाय तो वहा प्रमुख रूप से निन्म आदिवासी जनजाति देखने को मिलता है जैसे – आदी, आका, आपतानी, न्यिशी, तागीन, गालो, खामति, खोवा, मिशमी ,खासी , कुकी , मोनपा, सिंगफो, लुशाई , तांगसा, बांग्चु , मेमबा आदि अरुणाचल प्रदेश की उल्लेखनीय तथा मान्यता प्राप्त आदिवासी जनजातियाँ है। इनमें से आपातानी जनजाति न केवल अरुणाचल में बल्कि पूरे पूर्वोत्तर भारत का ही एक विशेष जनजाति है। यद्दपि इनके इतिहास का व संस्कृति का सही - सही पता नहीं चल पाया बल्कि मौखिक रूप से सुनी सुनाई बातों से यह पता लगाया जा सकता है कि यह जनजाति का अपना एक ख़ास लोकतांत्रिक प्रणाली होते है जिससे वह अपना घर-परिवार तथा समाज को चलाते हैं। दरअसल आपातानी पूर्वोत्तर भारत की अरुणाचल प्रदेश के लोअर सुवनसिरी जिले में जाईरों नामक घाटी में रहने वाले एक समूह है। यह जनजाति पूर्वी हिमालय के प्रमुख जातीय समूहों में से एक अनूठी जनजाति हैं। जिनका अपना विशिस्ट सांस्कृतिक परम्पराओं के साथ ही खान- पान, वेशभूषा, रहन- सहन आदि भी एक अलग ही पहचान प्रदान करता है। एक ख़ास सभ्यता की संरक्षक आपातानी लोगों का अपना कुछ निजी नियम व प्रथा है जिसका पालन वह खेती बाति या जीविकोपार्जन में करते हैं। जिन प्रथाओं में से एक प्रथा तब देखा जाता हैं जब वह लोग खेती को उपजाओं के रूप में तैयार करते हैं। इस समाज में व्यवस्थित भूमि उपयोग की प्रथाओं और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और संरक्षण के समृद्ध पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान पुराने काल से ही अधिग्रहित हैं। इनके कृषि प्रणाली में किसी भी तरह के जानवरों या मशीनों का प्रयोग नहीं करते हैं , इसके वजाय वह खुद अपने मेहनत से ही कार्य पूरा कर लेते हैं। यह जनजाति विभिन्न उत्सवों, हथकरघा की नमूना, बेंत और बांस शिल्प की कौशलता एवं जीवंत पारंपरिक ग्रामीण संस्कृति के लिए जाना जाता है। इस जनजाति ने पूरे अरुणाचल के साथ-साथ पूर्वोत्तर भारत का जीवित सांस्कृतिक परिदृश्य का एक अच्छा उदाहरण है, जिन्होंने मनुष्य और पर्यावरण को एक दूसरे के साथ एक दूसरे पर निर्भरता की स्थिति को बनाए रखा है। इसीलिए आधुनिकरण के इस दौर में भी अपनी पारंपरिक प्रथाओं को जीवित रखने में व प्रकृति के अधिक निकट रहने में सफलता हासील की है। इसके अलावा इस जनजाति का प्रमुख दो त्यौहार है – डरी और मायोको , जिसके माध्यम से ही ये लोग अपनी संस्कृति को अभिव्यक्त करता है। आपातानी लोगों के अनुष्ठानो में से एक है गीति परम्परा का अनुष्ठान जो धर्म से सम्बन्ध रखते हैं और जिसके माध्यम से वे लोग आत्माओं व देवताओं के साथ बनाए गए संबंधों का व्यक्त करता है और जिसमें आपातानी जनजातियों से संबधित अनेक प्रकार की मिथकीय कहानियां भी शामिल होता है। इनका एक मान्यता यह भी है कि किसी एक मरे हुए आपातानी व्यक्ति के कब्र के ऊपर उन्ही की लोगों के द्वारा जानवरों को बलि दिया गया सर उसके ऊपर लटकाकर रखा जाना भी एक सांस्कृतिक परंपरा है। इनका यह भी मानना है कि जब कोई दुर्भाग्यवशात:कुछ घटना घट जाता है तो उसका कारण ये लोग प्रेत, आत्माओं आदि को मानता है और उसके जगह घरेलु जानवरों का बलिदान देते हुए उससे मुक्ति का प्रार्थना करता है। इससे एक बात स्पष्ट लक्षित होता है कि आज भी इन जनजातियों के पारंपरिक व धार्मिक संस्कृतियों में अंधविश्वास पनपे हुए है। यद्धपि ये लोग प्रकृति के अधिक निकट रहा है और इन्हें प्रकृति के संरक्षक भी माना जाता है , परन्तु उसके भीतर आज भी उन्ही पुराने मान्यताओं को ही मानता हुआ देखा जा सकता है जिसके बिपरीत पूरी दुनिया उत्तर आधुनिकता के पीछे भागता हुआ नजर आता हैं। शायद ही इन जनजातियों के इन्ही पुराने मान्यताओं के कारण ही पिछड़ेपन का

शिकार होना पड़ता है और आपातानी लोगों को दुसरी जनजातियों की भाँती हमेशा से ही जल- जंगल- जमीन आदि के लिए संघर्षरत नजर आती है।

अन्य जाति समुदाय की तरह ही आपातानी जनजातियों का भी कुछ पारंपरिक साज सज्जा होती है जिससे उनका परम्परा व संस्कृति सभ्यता को एक भिन्न रूप की स्वरुप प्राप्त हुआ है और जिसके कारण उन्हे सहज ही पहचाना जा सकता है। इस संदर्भ में हम पुरुष और स्त्री का अलग अलग स्वरुप ले सकते हैं , जिनमें पुरुष अपने माथे के ऊपर एक प्रतीक चिन्ह जैसा पीतल की छड बांधते हैं जिसे स्थानीय भाषा में ‘ पिडिंग’ कहा जाता है। वे लाल रंग में चित्रित महीन बेंत की पट्टी जैसा कुछ पहनते हैं और वह अपने निचले होंठ के निचे एक टेटू बनाते हैं जो अंग्रेजी के ‘टी’ आकार के होता हैं। इसी तरह महिलाएँ भी अपने मुह में टेटू बनाती हैं और हमेशा से ही इसी तरह उनका एक ख़ास परम्परा रहा है जिसके भीतर भी उनका अपना मान्यतायें भी छुपा हुआ है। आदि काल से ही आपातानी लोगों का पहनावें , जीवन शैली यद्दपि सहज व सरल रहा है फिर भी उनके पारंपरिक पोशाक में रंगीन भरी कलाओं का मौजूदगी देखने को मिलता है। इनके जीवन शैली तथा सोचने विचारने की ढंग कुछ अलग ही है। आज भी आपातानी लोगों के समुदाई में पितृसत्तात्मकता की भूमिका उतना ही सबल है जो सुरुआती दौर में था और वह लोग किसी को भी उसी दृष्टी से जाज पड़ताल करता है। इस दृष्टि से उन समाज में स्त्री की तुलना में पुरुषों की ज्यादा महत्व चलता है और घर के मुखिया भी पुरुष ही होता है। इस संदर्भ में आपातानी लोगों में एक परम्परा यह भी देखने को मिलता हैं कि लिंग भेद से ही घर और परिवार में विभाजन तैयार किया जाता है। आपातनी संस्कृति में महिलाएँ को केवल जंगली और रसोई के सब्जियां तोड़ना, खाना बनाना, पानी लाना, घरों की साफाई करना, कपड़े और वर्तन साफ करना, बच्चों को संभालना, आदि के साथ साथ खेत में पुरुषों का थोड़ा बहुत सहायता करना ही है। इसके अलावा पुरुषों का काम शिकार करना और खेत में महिलाओं के साथ पुरुषों का भी हाथ बटाना होता है। इस तरह आपातानी लोग अपने काम काजों में मस्त रहता है और सहज सरल जीवन निर्वाह करता है। आज की प्रासंगिकता के रूप में अगर आपतानी जनजातियों को देखा जाय तो आपातानी लोगों में पहले की तुलना में काफी बदलाव की स्वरुप पाया जाता है और आधुनिकता के इस दौर में एक प्रभावशाली एवं प्रगतिपरक दर दिखाई पड़ता है , फिर भी उनकी अपनी परम्परा, रीति- रिवाज , तथा संस्कृतियों में एक अलग ही महत्व देखने मिलता है। आज पूरे देश की भाँती उन जनजातियों में भी धीरे धीरे उच्च शिक्षा का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। दलित साहित्य की तरह आदिवासी साहित्य भी जीवन और जीवन के यथार्थ का साहित्य है। कल्पना के आधार पर नहीं है। जो भोगा है वही साहित्यकारों ने लिखा है। आदिवासी जीवन की शैली, समस्याएँ, शोषण एवं पीड़ा ही उनके साहित्य की वस्तु है।

"हम स्टेज पर गए ही नहीं

जो हमारे नाम पर बनाई गई थी

हमें बुलाया भी नहीं गया उँगली के संकेत से

हमारी जगह हमें दिखा दी गई

हम वही बैठ गए

हमें खूब सम्मान मिला

और वे स्टेज पर खड़े होकर

हमारा दुःख हमें ही बताते रहे हमारा दुःख अपना ही रहा

जो कभी उनका हुआ ही नहीं। '[4] (वाहरू सोनवणे की 'स्टेज' कविता)

उपरोक्त इन सभी तथ्य एवं संदर्भो के अनुसार यह कहा जा सकता है कि आपातानी लोग न केवल पूर्वोत्तर प्रदेशों में बल्कि पूरे भारत में अपना पहचान बना चुकी है और उनकी कला एवं संस्कृति, रहन- सहन, खान- पान , रीति- रिवाज, नियम- कानून , उत्सव- त्यौहारों आदि का विश्व भर में एक ख़ास महत्व सिद्ध हुई है। वर्त्तमान समय में सरकार द्वारा इन तमाम आदिवासी जनजातियों के लिए अनेक योजनाएँ बनाये गए है और अनेक प्रकार के संवैधानिक अधिनियम भी पारित किया जा चुका है। जिससे सभी जनजातियों की अस्मिता की सुरक्षा बनाए रखने में काफी मददगार सिद्ध हुई है और दुसरे संस्कृति एवं समाज के साथ भी जुड़े रहने में सुविधाएं प्राप्त हुई है। इस संदर्भ में आदिवासी जनजाति अस्मिता के सपक्ष में कही गयी पंडित नेहरु जी की निम्न कथन का उल्लेख स्वरूपित कर सकते हैं – "भारत के आदिवासी हजारों वर्षो से इस देश के सबसे पुराने निवासी है। बाद में यहाँ आने वाले समूहों ने इन आदिवासियों को दबाकर रखा है , उनकी जमीन छीन ली, उन्हें पर्वतों व जंगलों में खदेड़ा और उन्हे उत्पीड़कों ने अपने हित में बेगार करने की विवश किया। आज विभिन्न समूहों के लगभग चार करोड़ आदिवासी है (अब करीब दस करोड़) जिन पर सरकार को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, चूकी वे रास्ट्रीय संस्कृति से अलग थलग रह रहे हैं" [5]- इस कथन से यह स्पष्ट मत प्रकट होता है कि न केवल वर्त्तमान समय में बल्कि स्वतन्त्रता के पश्चात से ही आजाद भारत में जनजाति के संदर्भ में सापेक्षिक परिकल्पनाएं मुखर हो रही थी साथ ही जनजातीय सह - अस्तित्व के प्रगतिशील पक्ष में जोरदार आपील चल रहे थे, जिसका पूर्ण प्रभावित असर आज भी देखने को मिलता है।

निष्कर्ष : अरुणाचल प्रदेश की जैरोन घाटी में रहने वाले आपतानी लोग आधुनिकीकरण की लगातार बदलती धाराओं के बीच अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखते हुए, परंपरा और अनुकूलन के अनूठे मिश्रण का उदाहरण पेश करते हैं।आपतानी जनजाति की लोकतांत्रिक प्रणाली, जो उनके इतिहास में गहराई से निहित है, न केवल उनकी पारिवारिक संरचनाओं को नियंत्रित करती है बल्कि उनके सामाजिक ताने-बाने को भी आकार देती है। आधुनिक मशीनरी से रहित, टिकाऊ कृषि पद्धतियों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता, प्रकृति के साथ उनके सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व को रेखांकित करती है। यह प्रतिबद्धता, हथकरघा, बेंत और बांस शिल्प में उनके कौशल के साथ मिलकर, एक जीवंत सांस्कृतिक परिदृश्य को प्रदर्शित करती है, जो परंपरा और समकालीन दुनिया के बीच की खाई

को पाटती है। उनकी सांस्कृतिक विरासत न केवल अपने अनूठे रीति-रिवाजों को व्यक्त करते हैं बल्कि उनके विश्वदृष्टिकोण को आकार देने में पौराणिक कहानियों और धार्मिक प्रथाओं के महत्व को भी उजागर करते हैं। बलि चढ़ाए गए जानवर के सिर को कब्र के ऊपर रखने की रस्म और अलौकिक शक्तियों में विश्वास, प्रकृति के साथ उनके गहरे संबंध के साथ-साथ सदियों पुराने अंधविश्वासों के सह-अस्तित्व को प्रदर्शित करता है। बहरहाल, यह स्पष्ट होता हैं कि भारतीय सांस्कृतिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य की प्रगतिशीलता में आपातानी जनजाति का एक विशेष महत्व हैं| इस जन समुदाय ने अपनी पारंपरिक विरासत और लोकत्रांतिक दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत के वैचारिक और सांस्कृतिक आयामों को एक नई दिशा –दशा प्रदान की हैं |

संदर्भ सूची-

1. हिंदी विश्वकोश खण्ड-1, प्रधान सं. कमलापति त्रिपाठी, पृ. 370
2. बन्ने, डॉ. पंडित, हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, पृष्ट-15
3. गुप्ता, रमणिका, आदिवासी कौन ? , पृष्ठ- 76
4. गुप्ता, सं. रमणिका, आदिवासी साहित्य यात्रा, पृ. 28
5. जवाहर लाल नेहरू- 1958 (मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनिया)

सहायक ग्रन्थ -

1. गुप्ता, रमणिका.आदिवासी कौन, दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन,2016
2. मीणा, हरिराम.आदिवासी दुनिया. भारत: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,2013
3. सिंह, विजेंद्र प्रताप , गोंड रवि कुमार , कान्त विष्णु. आदिवासी अस्मिता के नए आयाम,.दिल्ली: सन्मति पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटरस,2016
4. बोस, एम. एल.हिस्ट्री ऑफ अरुणाचल प्रदेश.अरुणाचल: संकल्पना प्रकाशन,1997
5. त्रिपाठी. सं. कमलापति त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश खण्ड-1, वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा,1968
6. बन्ने, डॉ. पंडित. हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श.कानपूर: अमन प्रकाशन,2014
7. स. वी, विजी. समकालीन हिंदी आदिवासी साहित्य, दिल्ली: अनुज्ञा बुक्स,2021
8. मीणा, केदार प्रसाद. आदिवासी प्रतिरोध. दिल्ली: अनुज्ञा बुक्स, 2017
9. Subramanyam, Planiappan . Apatani: The Forgotten origin. Chennai: Notion Press, 2019

स्त्री आत्मकथाओं में पुरुष पात्रों का विश्लेषण

अनिमा विश्वास

शोधार्थी, हिंदी विभाग, असम विश्वविद्यालय,सिलचर असम

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 55 – 62 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

शोध-सार

सभ्य समाज के निर्माण के साथ शुरुआत से लेकर आज तक समाज के कर्ताधर्ता पुरुष ही रहे हैं। सभी सामाजिक प्रक्रिया चाहे वे धार्मिक रीति-रिवाज हो या सामाजिक प्रतिष्ठा के कार्य, सभी प्रक्रियाएं पुरुष के ही इर्द गिर्द संचालित होती है। ऐसे में जब समाज व साहित्य का कोई हिस्सा पुरुष के वर्चस्व से अछूता नहीं रहा, तो स्त्री आत्मकथाओं में स्थान पाने से कैसे रह सकता था ? जन्म से मृत्यु तक पुरुष की ही अधीनता में स्त्री अपनी जीवन को सँवारती रही है। विभिन्न स्त्री आत्मकथाएँ पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री चाहे पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़ उसे पुरुष की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती है। अधिकांश स्त्री रचनाकारों को आत्मकथा लेखन का कारण पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रस्त समाज की प्रताड़ना एवं उपेक्षित व्यवहार से मिला है। ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। पद्मा सचदेव, मन्नू भंडारी, शिला झुनझुनवाला, कृष्णा अग्निहोत्री, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, कुसुम अंचल, कौशल्या बैसंत्री व रमणिका गुप्ता सहित अनेक स्त्री लेखिकाओं द्वारा आत्मकथा लिखने के पीछे पितृसत्तात्मक समाज के दमघोटू परिवेश में साँस ले रही अंतर्मन की छटपटाहट है। हाँ, एकाध आत्मकथाएँ ऐसी भी मिलेगी जिसे किसी लेखिका ने अपने प्रसिद्धि के लिए या मन बहलाने के लिए लिखी हो परंतु उसमें भी किसी न किसी रूप में पुरुष तथा पुरुषसत्ता का सन्दर्भ दृष्टिगत हो जाता है।

बीज शब्द: स्त्री विमर्श, अस्मिता, स्त्री आत्मकथा, पितृसत्ता, संस्कार, समाज

मूल– आलेख :अतीत में प्रत्येक इतिहास का निर्माता पुरुष ही रहा है। वर्तमान समय में जब स्त्री जागतिक मामलों में रूचि लेना शुरू कर रही है तब भी वह वही जगत है जो पुरुष का है। धर्म, समाज और साहित्य में स्त्री को विभिन्न रूपों में परिभाषित की गई है। कभी वह पुरुषों की अनुगामिनी बताई गई, तो कभी अबला और त्याग की मूर्ति बताई गई, तो कभी आवेगमयी और चंचला जो तर्क के बंधन को नहीं मानती। पुरुष की दृष्टि में स्त्री मांगलिक और अशुभ दोनों हुई। इसके विपरीत पुरुष को सदा शौर्य एवं वीर्य का प्रतीक और तर्क और न्याय के साथ साथ मर्यादा का पुजारी माना गया। सिमोन के शब्दों में "पुरुष की यह स्वभावगत विशेषता है कि वह हमेशा अनन्य के सन्दर्भ में स्वयं के बारे में सोचता है। जगत के बारे में उसका सोच द्वंद्वात्मकता का होता है। वह हमेशा द्वैत

में सोचता है, अतः उसने स्वयं के सन्दर्भ में औरत को अन्य की कोटि में रखा। उसके चिंतन में यह द्वैत भाव पहले इतना स्पष्ट नहीं था। पहले तो वह एक ही तत्व में स्त्री और पुरुष, दोनों का अवतरण मान लेता था, किन्तु जैसे जैसे औरत की भुमिका विस्तृत होती गयी, वह पुरुष के लिए सम्पूर्ण रूप से अन्या होती चली गई। उसके नाना रूप उभरे। कभी पुरुष ने उसे देवी माना, तो कभी दानवी।"[1]इसप्रकार पुरुष ने औरत के लिए एक दुनिया बनाने का अधिकार अपने पास रखा।

स्त्री और पुरुष के बीच सम्बन्ध का कटु यथार्थ है कि स्त्री पुरुष को जन्म देती है परन्तु पुरुष उसका शासन तथा अमर्यादित शोषण करता है और ऐसा करने के लिए वह सामाजिक, नैतिक और धार्मिक रूप से अधिकृत है। परन्तु भारतीय स्त्रियों की आतंरिक और बाहरी दुनिया में पिछले पचास वर्षों में जबरदस्त बदलाव आये हैं। आज स्त्रियाँ अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति सिर्फ सजग ही नहीं हुई बल्कि अपनी अंतर्ध्वनि को सप्रमाण लिख भी रही हैं कि उनकी राय में पुरुष क्या देख रहा है ? वह यह भी देख और लिख रही है कि पुरुषों में वे क्या क्या देख रही हैं ? आज स्त्री लेखन पिटी पिटाई समीक्षा का निरीह अनुगामी न रहकर नई परती जमीन तोड़ने जैसा आक्रामक और सतर्क है। इन लेखिकाओं में प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, अनामिका आदि का उल्लेख सहज ही किया जा सकता है।

पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था द्वारा स्त्री पर होते आये शोषण, अत्याचार तथा दमन के विरोध में स्त्री चेतना ने ही स्त्री विमर्श को जन्म दिया है। स्त्री, पुरुष की अहंवादिता की शिकार है, परन्तु उस अहंवादिता का मुकाबला आज वह हिम्मत के साथ कर रही है। वह अपना पूरा जीवन 'अन्य' होकर नहीं जीना चाहती इसके लिए उसका सारा प्रयास पितृसत्तात्मक मानसिकता के अस्वीकार व स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकृति का है। आज स्त्री उन मिथकों को तोड़ रही है जो उसके विरुद्ध रचे गए हैं। पितृसत्तामक समाज स्त्री के अधिकारों पर विविध वर्जनाओं व निषेधों का पहरा बैठाता रहा है ताकि वह पुरुषों की गुलाम बनी रहे। जहाँ परंपरा नारी को पितृसत्ता के प्रभुता में रहने को बाध्य करती है, वहाँ आधुनिक स्त्री की चेतना उसे पितृसत्ता के सभी बंधनों को तोड़ डालने के लिये प्रेरित करती है। आज स्त्री अपनी मुक्ति के लिए, अपनी अस्मिता के लिए तथा स्वयं को मनुष्य के रूप में मान्यता दिए जाने के लिए व्यापक स्तर पर संघर्ष कर रही है। स्त्री के इस संघर्ष का उद्देश्य पुरुष को दरकिनार कर अपना वर्चस्व स्थापित करना नहीं है, अपितु उन परम्पराओं और रूढ़ियों से मुक्ति है जो केवल स्त्री के लिए निर्धारित है। इसी सन्दर्भ में मृणाल पाण्डे की स्त्री मुक्ति के विचार पर किया गया यह टिप्पणी उल्लेखनीय है –"नारीवाद पुरुषों का नहीं उनकी मानवीयता घटाने वाले उस छद्म मुखौटें का प्रतिकार करता रहा है जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है और जिसके पीछे झूठी अहम्मन्यता और उत्पीड़क प्रवृत्ति के अलावा कुछ नहीं है।"[2] स्पष्ट है कि स्त्री पुरुष से संघर्षशील हो उससे मुक्ति की कामना नहीं करती अपितु उस मुक्ति के रूप में वास्तविक कामना पुरुष प्रधान समाज की संकीर्ण विचारधारा से है।

स्त्री के दृष्टिकोण, स्वर, निर्णय और उसके यथार्थ वास्तविक अध्ययन में स्त्री आत्मकथा सबसे ज्यादा मददगार साबित होती है जो सिर्फ उसका नहीं बल्कि व्यापक समाज का हिस्सा बन जाता है। इस प्रकार स्त्री-आत्मकथा स्त्री के बड़े समुदाय का

प्रतिनिधित्व करती है। आत्मकथा में वर्णित कथा कई स्त्रियों की अपनी अंतर्व्यथा होती है। साथ ही कैसे एक स्त्री का व्यक्तित्व आकार लेता है, किन परिस्थितियों के बीच से वे गुजरी, कहाँ से होता हुआ उनका जीवन कहाँ तक पहुँचा और इस प्रक्रिया में उनकी संवेदनाएं किस प्रकार परिवर्धित हुई, उसका जीवंत चित्र आत्मकथा का प्राण है।

स्त्री लेखन में विभिन्न पुरुषों की छवि को देखने से कुछ बुनियादी सवाल पैदा होते हैं। आत्मकथा में व्यक्त लेखिका के सबसे निकटतम पुरुष जैसे पिता, पति, प्रेमी या पुत्र का रेखांकन नायक बनाम खलनायक किस रूप में दर्ज हुआ है ? नई सदी में नई मानसिकता से उत्प्रेरित हमारे इस समाज में नए आचार विचार व्यवहार को जीती स्त्रियां क्या मौजूदा परिवार व्यवस्था की पुरानी निरकुंश पितृसत्ता द्वारा कसी बेड़ियां तोड़कर अपने निजी विवेक से स्वतंत्र फैसला लेकर समानाधिकार, आत्म सम्मान व निजी जगह पाने जैसे बुनियादी हक लेने की सामर्थ्य बटोर पायी हैं या वे अभी भी बेचेहरा बनकर एकाधिकार वाली पितृसत्ता द्वारा उन पर जबरन लाद दिए गये संबंधों को ढोती हुई (पुत्री, मां, पत्नी या प्रेमिका बनकर) पुरुष की निजी सम्पत्ति समझी जाती रहेंगी ? इन सवालों का जवाब स्वरुप स्त्रीवादी लेखिका अनामिका लिखती हैं- 'दोषी पुरुष नहीं, वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियां उनसे हीनतर है उनके भोग का साधन मात्र।'[3] आज का स्त्री लेखन महज नारी मुक्ति की सीमाओं में बंधा नहीं रह गया है बल्कि स्त्री के विशद रचना संसार में निरूपित पुरुष छवि बेहद विश्वसनीय पुख्ता जमीन पर चलकर हमारे सामने उपस्थित है। इसी सन्दर्भ में समकालीन आत्मकथाओं में स्त्री की दृष्टि में पुरुष पात्रों पर विचार करना महत्वपूर्ण है।

भारतीय सामाजिक संरचना के अनुसार संतान पर भी सबसे पहला अधिकार पिता का ही होता है। कोई भी स्त्री अपने जीवन में सबसे पहले जिस पुरुष का साक्षात्कार पाती है वह उनके पिता ही होते है। 'पिता' शब्द एक स्त्री के लिए जन्मदाता, अभिभावक तथा संरक्षक के समानार्थी है। परन्तु अपनी पुत्री के प्रति एक पिता की भूमिका क्या होनी चाहिए यह हमारा समाज निर्णय लेता है। जिस प्रकार समाज एक स्त्री का निर्माता बनता है उसी प्रकार पुंसवादी समाज एक पिता को केवल ममतामयी पिता बने रहने की इजाजत नहीं देता। इसके अपेक्षा उसे कठोर बने रहने, भावनाओं को काबू में करने, परिवार को, समाज को अपने नियंत्रण में रखने वाले 'पुरुष' बनने के लिए प्रशिक्षित करता है। पुंसवादी समाज द्वारा निर्मित पुरुष, पिता बनकर भी अपनी संतान के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति खुलकर नहीं कर पाता।

लेखिका कृष्णा अग्निहोत्री ने अपनी आत्मकथा 'लगता नहीं है दिल मेरा' में अपने आदर्शवादी पिता का वर्णन किया है जिन्होंने बचपन से ही अपनी बेटी को सशक्त होने की प्रेरणा दी, उन्हें उच्च शिक्षा से शिक्षित किया, परन्तु मात्र सोलह साल की उम्र में पिता ने अपनी प्रतिष्ठानुकुल सुन्दर, सुशील अफसर दामाद पाकर बेटी का विवाह करा दिया। पर अफसर पति ने अपनी सुन्दर पत्नी को एक देह से बढ़कर और कुछ नहीं माना। आये दिन शारीरिक मानसिक अत्याचार होने लगा। पति के अत्याचार से पीड़ित लेखिका ने जब पति से अलग होने का निर्णय लिया उसी क्षण उनके पिता ने भी बेटी से मुँह मोड़ लिया।

कहते है एक बार बेटी ब्याह करके मायके की चौखट जब लाँघती है तो वह पराई हो जाती है, ससुराल ही उसका घर होता है और वही से उसकी अरथी निकलती है। मायके में लौटने के बाद लेखिका और उनकी बहन जब पिता के मूंह से यह सुनती है कि ‘सोचा था तुम दोनों का ब्याह हो गया है, चलो कुछ तो मुक्ति मिली परन्तु तुम दोनों तो फिर से छाती पर मूंग दलने आ गई हो।’[4] पिता के इस कथन से लेखिका चौंक जाती है। जिस बेटी को देखते ही पिता का चेहरा मुस्कुराहट से भर जाता था, उसके लिए ये कड़वाहट भरे शब्द पिता सिर्फ इसलिए कह रहे थे क्योंकि पति के अत्याचार से त्रस्त होकर बेटी ने परंपरा का निर्वाह करने से इंकार कर दिया था। और इस प्रकार उनका अंतिम आधार भी खो जाता है।

इसी क्रम में चंद्रकांता द्वारा रचित आत्मकथात्मक संस्मरण ‘हाशिए की इबारतें' में लेखिका ने बेटी, माँ, बहन, पत्नी, दादी, नानी का रोल निभाती स्त्री की सोच और दृष्टिकोण को जानने की कोशिश की है। और साथ-साथ कई दशकों को पीछे छोड़कर प्रगति के तमाम सोपान पार करने के बाद पुरुष वर्चस्व के अहम पूरित सोच में कितना कुछ सार्थक बदलाव आ पाया है इस पर भी विचार किया है। लेखिका के जीवन से सम्बंधित प्रथम पुरुष उनके ताता (पिता) समाज के एक आदर्शवान पुरुष रहे हैं। बचपन से ही लेखिका ने देखा है कि किस प्रकार उनके ताता अपने हर दायित्व को पूरी गहनता से निभाते रहे, वह चाहे एक सामाजिक व्यक्ति के रूप में हो, चाहे भाई-बन्धु के रूप में हो। बच्चों को भी कभी किसी चीज का कोई अभाव न होने दिया। माँ के गुजर जाने के बाद लेखिका और उनके भाई बहनों के लिये ताता माँ और पिता दोनों बन गये। लेखिका के पिता एक समाज सुधारक थे उन्होंने अपने बेटियों के लिए स्त्री शिक्षा के बन्द द्वार खोल दिए। परवरिश तथा लाड़-प्यार में भी लड़के और लड़कियों में कभी भेदभाव नहीं किया परन्तु तमाम लाड़ प्यार के बावजूद बच्चों को अनुशासन और संस्कारों के बेड़ियों में रखा। एक समय आया जब अपने जिम्मेदारी से मुक्त होने के चिंता में, बेटियां अपने विवेक से सही- गलत का भेद भाव कर सके उस उम्र तक पहुँचने से पहले ही उनके पैरों में शादी की बेड़ियाँ डाल दी। जो उनके पिता के नजर में बेटियों के भविष्य को सुरक्षित करना था। परन्तु क्या शादी से बेटियों की सुरक्षा सुनिश्चित हो जाती है ! यह विचारणीय है। इसी परिप्रेक्ष में लेखिका अपनी बहन शीला के पति टी. एन. का भी जिक्र करती है जिसने पति होने के अहंकारी पुलिसिया धौंस के चलते अपनी पत्नी को जिन्दा जला दिया। परन्तु पुरुष वर्चस्ववादी समाज ने इसे बस एक दुर्घटना ही माना यहां तक खुद लेखिका के आदर्शवादी पिता ने भी अपनी बेटी को न्याय दिलाने के लिये कोई कदम नहीं उठाया। इस पर लेखिका ने लिखा है – “लाड़ तो तुमने खूब किया पर एक लड़की के साथ हुए अन्याय को चुपचाप सह गये, आवाज भी न उठाई। क्या बेटियों की मौत इतनी सस्ती होती है कि उसके कारणों की खोज भी जरुरी नहीं ?”[5] शीला के जगह अगर घर के किसी बेटे के साथ ऐसी कोई अनहोनी होती तब भी क्या पिता का यही रवैया रहता !

सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए पति-पत्नी में प्रेम, आत्मसमर्पण, सहानुभूति, सेवा, त्याग व सहिष्णुता की आवश्यकता मानी जाती है परन्तु पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में पुरुष का अहं, प्रतिष्ठा के झूठे मानदंड तथा नारी की बेबसी, विवशता का लाभ उठाकर पत्नी को गृह बंदिनी, पति की आश्रिता बनाया जाता रहा है। भारतीय दाम्पत्य जीवन में पति की स्थिति पत्नी से श्रेष्ठ मानी जाती रही

है। पत्नी पति के अधीन और पति के इशारें पर जीने के लिए विवश है। और इस प्रकार पारिवारिक जीवन में पति शासक बनकर पत्नी की इच्छाओं तथा विचारों को कुचलकर रखता है।

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में लेखिका सुशीला टाकभौरे ने उनके और उनके पति के बीच के तनाव पूर्ण सम्बन्ध का चित्रण किया है। पति परमेश्वर की धारणा समाज में होने के कारण लेखिका चुपचाप सब कुछ सह तो लेती है पर उनके पति ने कभी उनसे दो अच्छे शब्द नहीं बोले। वह लेखिका से गाली-गलौज तथा मार-पीट तक करते थे। कई बार लेखिका के मन में आया कि अन्याय के सामने सर झुकाना गलत बात है। आर्थिक स्तर पर आत्मनिर्भर होने के बाद भी पति के जुल्मों के शिकार होती रही, छोटी छोटी बातों के लिए पति द्वारा अपमानित होती रही। इस प्रकार के कई उत्पीड़न सहे पर वे रिश्तों को तोड़ न सकी और न ही इस शिकंजे से वह बाहर निकल पाई। लेखिका के पतिदेव ने हमेशा उन्हें एक बर्तन मांझने वाली नौकरानी के बराबर ही समझा और लेखिका की शिक्षा, डिग्री, नौकरी और वेतन को कभी अहमियत नहीं दी। जब जब लेखिका के मन में आक्रोश के क्षण आये वे निरंतर शब्दों में पिरोती गई।

इस प्रकार लेखिका ने अपने पति के प्रति अनेक अभियोगों को यद्यपि बयां किया है तथापि उनके मन में उनके प्रति कृतज्ञता भाव भी है। उन्होंने लिखा है- "टाकभौरे जी से मिले सहयोग को नकारा नहीं जा सकता। मेरी उपलब्धियों में उनका योगदान है, चाहे जिस रूप में मिला, मगर मिला। विरोध भाव रहने पर भी वे मुझे अपने अध्ययन, अनुभव के आधार पर पढ़ाई, लेखन, प्रकाशन सम्बन्धी अनेक जानकारी देते थे, जिसका लाभ मिलता रहा। उनके साथ मैं अनेक लोगों से मिलती रही, जो काम मैं अकेले नहीं कर सकती थी वह काम मैं उनके साथ रहकर करती रही।"[6] एक शिक्षिका होने के नाते जब लेखिका अपने जाति समुदाय के उत्थान के कार्य में आगे आई तब टाकभौरे जी ने हमेशा उन्हें प्रोत्साहित किया।

लेखिका अपने पति द्वारा अपने साथ किये गये उत्पीड़न का निष्कर्ष यह पाती है कि असल में यह उत्पीड़न, शोषण व्यक्तिगत नहीं होते बल्कि इसका मूल समाज में व्याप्त पुरुष मानसिकता है। उन्होंने लिखा है –"मैं इसका मूल टाकभौरे जी को नहीं, बल्कि इस समाज व्यवस्था को देती हूँ जहाँ स्त्रियों को हमेशा नगण्य माना जाता है। पुरुष अपनी पत्नी को पीट सकता है,वह इसे अपने पति होने के तानाशाही अधिकार के रूप में मानता हैं। इसमें परिवार, समाज के दुष्ट लोगों का मौन समर्थन भी रहता है।"[7]

पुरूषों की मनुवादी मानसिकता को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर लेखिका सुशीला टाकभौरे ने स्त्री को इसके चंगुल से निकलने के लिए संकेत किया है।

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा की लेखिका प्रभा खेतान ने दाम्पत्य जीवन की ओर नवीन दृष्टि से देखा है जिसके कारण वे सामाजिक फटकार,एवं घृणा को जीवनभर सहने के लिए विवश होती है। कलकत्ता के व्यापारिक दृष्टि से संपन्न समझे जाने वाले खेतान परिवार में जन्म लेनेवाली प्रभा अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल करती है और अपने से आयु में दुगने, विवाहित और पांच

संतानों के पिता, नेत्र विशेषग्य डॉ. सर्राफ के प्रेम में पड़कर आजीवन एक अवैध रिश्ते में बंधकर रह जाती है। डॉक्टर आजीवन अपनी पत्नी को छोड़ नहीं पाए और लेखिका उनकी ब्याहता नहीं बन पायी। पच्चीस वर्षों तक डॉ. सर्राफ के साथ विवाह के बिना ही लेखिका ने दांपत्य जीवन की सारी संभावनाओं का निर्वाह किया। डॉ. सर्राफ को पति मानकर पूरा जीवन तन मन एवं धन सर्राफ के पारिवारिक जीवन हेतु समर्पित किया परन्तु अंत तक डॉ. सर्राफ के जीवन में वे 'अन्य' ही बनी रही और समाज में उन्हें सिर्फ अपमान, घृणा और बदनामी ही मिली।

एक संपन्न घर की नवयुवती एक चालीस साल के खेले खाए व्यक्ति से कैसे प्रेम कर बैठी इस प्रश्न का उत्तर लेखिका ने आत्मकथा में दिया है कि उनका उपेक्षित बचपन, उनका घोर एकाकी जीवन इस सबके मूल में है। बचपन में माँ और भाई-बहन द्वारा की गयी उपेक्षा और पक्षपात ने लेखिका को बहुत ही घायल किया। पूरे परिवार में बस एक उनके पिता ही थे जो प्रभा से प्यार करते थे पर मात्र नौ साल के उम्र में ही वह पितृहारा हो गयी। पिता के अभाव की क्षतिपूर्ति डॉ. सर्राफ के रूप में हुई। प्रेम के अभाव में जिसका बचपन बीता हो, वह स्त्री डॉ. सर्राफ के छलावे में आ जाए तो कोई आश्चर्य नहीं। लेखिका ने लिखा है –"डॉक्टर साहब मेरे लिए बरगद की छाँव थे। मेरी जिंदगी का पड़ाव, मेरा सबकुछ, रुपये –पैसे की मुझे चिंता नहीं, मैं आत्मनिर्भर थी। मुझे पैसा कमाना आता है।"[8] परन्तु जिस निःस्वार्थ भाव से लेखिका ने डॉ. सर्राफ से प्रेम किया क्या उन्हें भी निःस्वार्थ प्रेम मिला ! यह संदेहास्पद है। उनका लेखिका से यह कहना है कि "क्या विवाहित पुरुष दूसरी औरत से खेलता नहीं ? मैंने कुछ अनोखा किया ? मैं फिर कहता हूँ मेरी तुम्हारे प्रति कोई जवाबदेही नहीं हम दोनों के बीच जो घटा वह क्षणों की कमजोरी थी, जब कोई लड़की गले पड़ जाए तो क्या करें बेचारा पुरुष ?"[9] इस उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि उनके दृष्टि में लेखिका के अनुभूतियों का कोई महत्व नहीं। उनके लिए औरत बस एक देह है, मन लगाने की चीज और कुछ नहीं। पर लेखिका ने अपने आवेगों की तुष्टि के लिए डॉ. साहब से फिर भी सम्बन्ध बनाए रखा। उन्होंने लेखिका की जिम्मेदारी कभी नहीं ली परन्तु जब लेखिका अपने व्यवसाय के माध्यम से खुद आत्मनिर्भर बन गयी तब अपने पौरुषीय अहंवादी सोच के चलते लेखिका के हर कदम पर डॉ साहब ने अपना नियंत्रण जमा लिया।

डॉ. सर्राफ के लिए लेखिका का प्यार उनके जिंदगी का बहुत बड़ा हिस्सा होकर भी समाजिक धरातल पर अपर्याप्त ही था और यही कारण है कि तमाम प्रयत्नों के बाद भी वे 'दूसरी औरत' के आरोपित खाँचे से कभी निकल नहीं पाई। प्रभा खेतान अपने आत्मकथा में एक प्रसंगवश अपने कॉलेज के दिनों में अपने अध्यापक डॉ. चेटर्जी द्वारा कहे गये कथन स्मरण करती है ".... स्त्री होना कोई अपराध नहीं है पर नारीत्व की आंसू भरी नियति स्वीकारना बहुत बड़ा अपराध है। अपनी नियति को बदल सको तो वह एकलव्य की गुरु दक्षिणा होगी।"[10] इस वाक्य में कहे गये सन्देश को लेखिका अपने जीवन में पूर्ण रूप से धारण तो नहीं कर पाई पर एक पुरुष द्वारा कहे गये इस वाक्य ने उनके मन में अमिट छाप छोड़ा जिसके सन्दर्भ में लेखिका ने लिखा है – "मैं अवाक उन्हें देखती रह गई थी। वह गौरवपूर्ण उन्नत ललाट, काले घुंघराले बाल, वह स्वच्छ पारदर्शी दृष्टि....पुरुष का ऐसा भी रूप होता है

!"[11] अपने गुरु द्वारा दी गयी नसीहत उनके आतंरिक मन में गहरे स्तर तक घर कर गई जिसका फल यह रहा कि प्रभा एक सशक्त व सबल महिला के रूप में अपनी एक अलग पहचान बनाने में सफल हो पाई।

कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा 'लगता नहीं है दिल मेरा' तथा 'और..और..औरत' में उनके कई प्रेम प्रसंग सामने आते हैं। अल्पायु में विवाहित जीवन में मिली असफलताओं के बाद उनके जीवन में कई पुरुष आए, कुछ ने हमदर्दी जताई, कुछ ने साथ निभाने के वादे भी किए, और कुछ ने प्रेम के डोरे में बाँधकर बदनाम करने का प्रयास भी किया। इसकी मुख्य वजह लेखिका का संवेदनशील स्वभाव ही जान पड़ता है। जब कोई स्त्री बार-बार अपने जीवन में ठोकरे खाती है तो वह कुछ हद तक अपना जीवन साथी बार बार ढूढने का प्रयास करती है जिसके साथ वे आजीवन रह सके परन्तु एक समय ऐसा आता है कि दुर्व्यवहार सहते सहते स्त्री थक जाती है तो फिर उसे पुरुषों के प्रति कोई हमदर्दी नहीं रहती और वे मुहतोड़ जवाब भी देती है। लेखिका ने अपनी आत्मकथा में कई पुरुष मित्रों का जिक्र किया है जिन्होंने अपने मन की बात सिद्ध न होने पर लेखिका के उम्र दराज होने पर उपहास किया और उनका अकारण अपमान कर उनके औरत मन को आहत किया।

उन्होंने लिखा है "आज भी ऊँची उड़ान के बावजूद स्त्री अस्मिता को समाज ने अपनी मुट्ठी में कैद रखा है। अपने को बहुत सुलझे, समझदार एवं आधुनिक कहने वाले पुरुषों ने भी बिना चढ़ावे के किसी स्त्री की मदद शायद ही की हो।"[12]

इसी सन्दर्भ में रमणिका गुप्ता द्वारा पुरुष प्रवृत्ति के बारे में लिखा गया यह कथन द्रष्टव्य है, कि "पुरुष औरत को उसी हालत में बर्दाश्त करता है,जब उसे यह यकीन हो जाए कि वह पूरी तरह उसी पर आश्रित है और खुद कोई निर्णय नहीं ले सकती या वह स्वयं उस औरत से डरने लगे तो वह उसे सहता है।"[13]

लेखिका निर्मला जैन की आत्मकथा 'जमाने में हम' में हम देखते है कि किस प्रकार उनके सौतेले भाई अपने पिताजी से बदला लेने के भाव से लेखिका की माँ के विरुद्ध पंचायत बिठाकर उनका अपमान करने से नहीं कतराते। लेखिका की माँ जो वर्षों से पूरी शिद्दत से अपने पति और उनकी पूर्वपत्नी के बच्चों की जिम्मेदारी के साथ-साथ पूरी गृहस्थी का बोझ उठाती आई, वर्षों बाद समाज और उनके बेटे की दृष्टि में उनकी शादी की वैधता की चिंता व्यापी थी। उनपर यह इल्जाम लगाया गया कि उन्होंने एक पत्नी की मौजूदगी में उनके पिताजी से शादी की। जबकि उनके पिताजी की यह 'तीसरी' शादी थी। समाज और कानून पुरुष को बहुपत्नी का इजाजत देता था, इसलिए सारे इल्जाम माँ पर लगाकर उन पर मुकदमा चलाकर उन्हें अवैध ठहरा दिया।

वही दूसरी तरफ पिता के असामयिक मृत्यु के बाद सहोदर बड़ा बेटा जिसकी परवरिश पर लेखिका की माँ ने अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर अपने संतानों के बीच लगभग राजकुँवर का दर्जा दे रखा था, वह अपने तमाम नकारेपन के चलते निरकुंश हो चला था, परन्तु माँ पुत्र मोह के चलते उसके नाज-नखरे उठाती, उसकी बदमिजाजी सहन करती रही। जिसका परिणाम यह मिला कि बेटा अपने जीवन की असफलताओं की जिम्मेदारी अपने स्वभाव और स्वार्थपरता के बजाय परिवार में होने वाली मुक़दमेबाजी

पर डाल कर माँ को आजीवन उलाहना देता रहा। यहाँ तक कि अपने जीवन में कुछ न कर पाने की कुंठा और ईर्ष्या के चलते माँ के बुढ़ापे का एकमात्र ठिकाना उनकी हवेली पर भी कब्ज़ा कर लिया और माँ के सामने विधवाश्रम चले जाने का प्रस्ताव रखा। अंत में यद्यपि कानून का फैसला माँ के पक्ष में आया परन्तु क्या अपने सपूत द्वारा किये गये ज्यादतियों का घाव उनके हृदय से मिट पाया !

'एक कहानी यह भी' की लेखिका मन्नू भंडारी का समूचा जीवन संघर्ष से युक्त रहा है। जिससे विवाह के लिए उन्होंने इतना संघर्ष किया उसी व्यक्ति ने विवाहेतर जीवन का एक एक पल मन्नू को संघर्ष के लिये रचा। मन्नू का मानसिक, आर्थिक, सामाजिक स्तर पर शोषण कर मन्नू को संघर्ष करने के लिए प्रवृत्त करने वाले राजेंद्र जैसे प्रबुद्ध संवेदनशील लेखक पर नीरू की यह टिपण्णी सार्थक है, "नारी हित की दुहाई देकर हजारों पृष्ठ काले करनेवाले पुरुष लेखक से वह पुरुष कही श्रेष्ठ है जो बोलता लिखता चाहे कुछ नहीं है मगर स्त्री के मानवीय अधिकारों का सम्मान करता हुआ, जो उसे बराबरी का दर्जा देता है।"[14] पितृसत्ता और सामंती वृत्ति के ठेकेदार जबतक अपने अहं की तुष्टि के लिए नारी का अपमान करेंगे नारी का संघर्ष का सिलसिला कभी ख़त्म नहीं होगा।

पितृसत्ता केवल भारतीय परिवेश में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व के अधिकांश समाज में देखने को मिलती है। और इस प्रकार समाज की सभी गतिविधियों पर प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से पुरुष का हस्तक्षेप रहता है। मानव समाज की विडम्बना रही है कि स्त्री को वही अधिकार मिले हुए हैं जिनसे पुरुषों के अधिकारों का अतिक्रमण न हो। पुरुष मानसिकता स्त्री को सबल देखने के पक्ष में नहीं रही है। पुरुष भले ही कितना कहीं अच्छा हो, कितने ही वादे करें मगर देर सबेर पितृ व्यवस्था उस पर हावी हो ही जाती है। पुरुष स्त्री को सामाजिक व्यवस्था के नजरों से तौलने लगता है। क्यों स्त्री को सामाजिक व पारिवारिक जीवन में बार बार अपने को साबित करना पड़ता है ? अग्नि परीक्षा सीता को ही क्यों देनी पड़ती है ? राम को क्यों नहीं ?

समाज के रिश्तों को देखें तो पाएंगे कि पिता का स्नेह पुत्री के प्रति माँ के अपेक्षा अधिक देखने को मिलता है। पर वही पुरुष अपनी पत्नी के प्रति निरकुंश बना रहता है। भारत की पहली आई.पी.एस. किरण बेदी अपनी आत्मकथा में लिखती है, "कितनी अजीब बात है कि आज का पुरुष अपनी बेटी को मुझ जैसी बनाना चाहता है, लेकिन अपनी पत्नी को नहीं। पिता के रूप में पुरुष सुरक्षित महसूस करता है, लेकिन पति के रूप में असुरक्षित क्यों ? मैं समानता और न्याय में विश्वास रखती हूँ।"15 पुरुष जितना सम्मान अपनी बेटी को देता है उतना दूसरे की बेटी को कहाँ देना चाहता है ? यह पारम्परिक सोच स्त्री के साथ भेदभाव की जड़ है। भारतीय पुरुष चाहे कितना ही सुरक्षित क्यों न हो, अपने पुराने संस्कारों से दूर नहीं हो सकता है। पत्नी को वह संपत्ति समझता है। जब कभी स्त्री पुरुष की आशा के विपरीत विचार प्रकट करती है, तब पुरुष का अहम आहत हुए बिना नहीं रहता।

निष्कर्ष : स्त्री आत्मकथाओं को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि स्त्री चाहे उच्च वर्ग की हो या निम्न वर्ग की या मध्यम वर्ग की हो, शायद ही कोई ऐसी स्त्री है जो बचपन, युवावस्था व प्रौढ़ावस्था में बिना किसी प्रकार की पुरुष प्रताड़ना के सहज जीवन जी हो।

आज इक्कीसवीं सदी में भी स्त्री-पुरुष सामाजिक स्तर पर एक दुसरे के पूरक नहीं बन पाएँ हैं। पुरुष चाहे जितने वायदे करें मगर देर सबेर पितृसत्तात्मक सोच उस पर हावी हो ही जाती है और वह स्त्री को व्यवस्था की नजरों से ही तौलता है। सामाजिक व्यवस्था की सामूहिक आवाज कमोवेश वहीँ ठहरी हुई है, जहाँ हजार साल पहले थी। अपने देश में पर्याप्त कानून बनते रहे हैं, पर आज उसे व्यावहारिक रूप से लागू करने की आवश्यकता है। वैसे स्त्रियाँ भी पुरुष से अलग होने हेतु बगावत नहीं कर रही है। वे तो अपने को वस्तु-स्थिति से उबारने हेतु प्रयासरत है। अपने लिए सम्मान चाहती है। पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर समाजोत्थान में योगदान देना चाहती है। सामाजिक जागरुकता बढ़ाने के लिए जन-जागृति और जन-चेतना के प्रयास होने चाहिए। समाज को भी चाहिए कि वस्तुस्थिति को समझकर समानता हेतु प्रयास करें तभी स्वस्थ व सुन्दर समाज की परिकल्पना सार्थक होगी।

संदर्भ सूची-

1. खेतान,प्रभा.स्त्री उपेक्षिता. नई दिल्ली:हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2008,पृ.51
2. पाण्डे,मृणाल.परिधि पर स्त्री. नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन,2017, पृष्ठ 9

.3 यादव,राजेंद्र.अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य .नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन,2008, पृ162.

.4 अग्निहोत्री,कृष्णा.लगता नहीं है दिल मेरा .नई दिल्ली : सामायिक प्रकाशन, 2010, पृ179.

.5 चंद्रकान्ता.हाशिए की इबारतें .नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ114.

.6 टाकभौरे,सुशीला.शिकंजे का दर्द .नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2011, पृ216-215 .

.7 वही, पृ 223 .

.8 खेतान,प्रभा.अन्या से अनन्या .नई दिल्ली:राजकमल पेपरबैक्स, 2010, पृ14.

.9 वही,पृ 77.

.10 वही,पृ 63.

.11 वही,पृ 63.

.12 अग्निहोत्री,कृष्णा .और...और...औरत .नई दिल्ली:सामायिक बुक्स,2010, पृ21.

.13 गुप्ता, रमणिका .हादसे .नई दिल्ली:राधाकृष्ण प्रकाशन, 2019, पृष्ठ 15

.14 नीरू.प्रतिरोध का दस्तावेज : महिला आत्मकथाएँ .नई दिल्ली :संजय प्रकाशन,2009,पृ85.

.15 बेदी,किरण .मोर्चा-दर-मोर्चा .नई दिल्ली:वाणी प्रकाशन, 2005, पृ 100.

मोहनदास नैमिशराय की कहानियों में आधुनिकता- बोध 'आवाजें और हमारा जवाब' कहानी संग्रह के विशेष संदर्भ में

बिभूति बिक्रम नाथ

शोधार्थी, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, असम

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 63 – 67 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

शोध-सार

मोहनदास नैमिशराय वर्तमान दलित साहित्य आंदोलन के सशक्त लेखक हैं | उनका साहित्य सत्तर और अस्सी के दशक में दलित उत्पीड़न और अत्याचार की अनगिनत घटनाओं को प्रकाश में लाता है। यह दलित चेतना के उदय और प्रतिरोध को भी उजागर करता है। उनकी कहानियाँ दलित जीवन के विभिन्न पहलूओं और संघर्षों को उजागर करती है। उनके 'आवाजें और हमारा जवाब' कहानी संग्रह जहाँ दलित जीवन की त्रासदीजन्य सच्चाइयों को सामने लाती है, वहीं दलितों के प्रति सवर्ण समाज के रवैये और सोच को भी उजागर करती है। मोहनदास नैमिशराय ने अपने दलित साहित्य में उसी स्तर की संवेदनशीलता और अनुभव को प्रस्तुत किया है, जो यथार्थ के धरातल पर उपजीव्य हैं| उन्होंने अपने साहित्य में समतावादी विचारों का आंदोलन शुरू करने की कोशिश की है। उनका साहित्य हमें विशुद्ध सैद्धांतिक मतों और मतभेदों के चक्र से कलात्मक और दार्शनिक दृष्टिकोण से दलित समाज के अनुभव की सरोकार में ले जाता है।

बीज शब्द: दलित, प्रतिरोध, उपजीव्य, सरोकार, दार्शनिक, आंदोलन, प्रगतिशील, अस्तित्वहीन, वैचारिकी, विद्रोह

मूल– आलेख: दलित साहित्यिक आंदोलन केवल एक आंदोलन नहीं बल्कि एक प्रगतिशील दर्शन और सरोकार की शुरुआत है। दलित जनमानस ने अपने साथ हुए अन्याय के हर पल को बारीकी से समय- फलक पर दर्ज कर रहा है। वह समाज में अपने लिए एक सुरक्षित एवं सम्मानजनक स्थान के लिए आशावादी है। अस्तित्वहीन और शोषण से पीड़ित जीवन के प्रति उनका विद्रोह कितना प्रबल और तीव्र है - इसका एहसास हमें इस वैचारिकी की आने वाली पीढ़ियों को देखकर हो सकता है। दलित विमर्श केवल दस्तावेजों की मुखर क्रांतिकारी स्वर नहीं हैं, बल्कि भारतीय समाज के हर एक जातिवादी और मनुवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर हैं| यह स्वर दलित समाज के संवर्धन और प्रगतिशीलता का स्वर हैं| हिंदी दलित साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लेखन अस्सी और नब्बे के दशकों के दौरान ही हुआ है। इस दौरान ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, कँवल भारती, माता प्रसाद, दयानंद बटोही, डॉ. एन. सिंह, डॉ.पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, सूरजपाल चौहान, मलखान सिंह, श्यौराजसिंह बेचैन और जयप्रकाश कर्दम आदि प्रमुख कवियों के रूप में उभरे।[1] दलित साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलितों के प्रति अकल्याणकारी पूर्वाग्रहों और उनके विकास में बाधक विचारधारा को गहराई से समझा और साहित्य में अभिव्यक्त किया। उन्होंने समाज की गरीबी, छुआछूत, अज्ञानता, अंधविश्वास, सांस्कृतिक विकृति, पारिवारिक जीवन में तनाव और जातिगत भेदभाव से उत्पन्न पीड़ा से जूझ रहे दलितों को क्रान्तिकारी चेतना के माध्यम से मुक्ति का संदेश दिया है। दलित लेखकों में सशक्त हस्ताक्षर मोहनदास नैमिशराय ने अपने साहित्य में न केवल जीवन के संघर्षों को सिद्ध किया है, बल्कि संरचनात्मक असमानता पर भी प्रहार किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि नैमिशराय जी का साहित्य दलितों की आवाज बनकर उन्हें उनकी पहचान दिलाने के लिए प्रतिबद्ध है। उन्होंने अपने कार्यों के माध्यम से विभिन्न शोषणों और निषेधों के बीच जीवित रहने के लिए दलितों के संघर्ष को स्पष्ट से प्रस्तुत किया है। नैमिशराय ने अपनी रचनाओं में दलित परिवेश का जिस सूक्ष्मता से चित्रण किया है वह सचमुच महत्वपूर्ण हैं। एक कहानीकार के रूप में नैमिशराय सामाजिक परिवेश से टकराते हुए समाज का यथार्थ चित्रण करने में सफल रहे हैं। उन्होंने अपनी

रचनाओं में यथार्थ का चित्रण इस हद तक किया है कि रचना दस्तावेज न रहकर समाज का दर्पण बन जाती है। इन कहानियों का उद्देश्य सिर्फ दलितों की पीड़ा को व्यक्त करना ही नहीं है, बल्कि उनके भीतर जल रहे गुस्से को धीरे-धीरे चेतना में परिवर्तित होते दिखाने के प्रति भी सजग रही हैं। नैमिशराय जी ने कहानी संग्रह 'आवाज़े' के माध्यम से दलित वर्ग की पीड़ा का सुन्दर चित्रण किया है। दलित साहित्य को विद्रोही एवं क्रांतिकारी चेतना के साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

दलित साहित्य का उद्देश्य एक वैकल्पिक संस्कृति और समाज में दलितों की एक अलग पहचान सृजित करना है। दलित लेखक किसी समूह, मसलन किसी जाति विशेष, सम्प्रदाय के खिलाफ नहीं है। लेकिन व्यवस्था के विरुद्ध है... चाहे वह सरकारी, सामाजिक, धार्मिक संस्था की व्यवस्था हो, जो अपनी सोच और दृष्टिकोण से दलितों का शोषण और दमन करती हो। दलितों की सबसे प्राथमिक आवश्यकता अपनी अस्मिता की तलाश है, जो हजारों साल के इतिहास में दबा दी गई है। अपनी पहचान की खोज करना, दलित संस्कृति का मूलभूत बदलाव के लिए प्रतिबद्धता के साथ तत्पर रहता है। दलित साहित्य में जो आक्रोश दिखाई देता है, वह ऊर्जा का काम कर रहा है। [2] आवाजें कहानी संग्रह की पहली कहानी आवाजें में ठाकुर औतार सिंह के खिलाफ सदियों से पीड़ित सफाईकर्मियों के जीवंत विद्रोह की अभिव्यक्ति है। मकदूमपुर नामक गांव में मेहतर समुदाय के लोग जमींदारों के जूठन खाकर अपना पेट भरते थे। एक दिन सभी सफाई कर्मचारी इकट्ठे होते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि वे न तो सफाई करेंगे और न ही गंदगी साफ करेंगे। दलितों में बदलाव की यह भावना दिन-ब-दिन मजबूत होती जा रही थी| सफाई कर्मचारी अपनी पंचायत की बैठक में निर्णय लेते हैं कि जो भी कूड़ा उठाने जाएगा उसका हुक्का पानी बंद कर दिया जाएगा। ठाकुर की बहू एक बच्चे को जन्म देती है लेकिन सफाईकर्मियों के समूह में से कोई भी वहां नहीं जाता है। एक सप्ताह बाद गांव में कूड़ा-कचरा निकलना शुरू हो जाता है। ठाकुर अपने कारिंदे को सफाईकर्मियों के समूह में भेजता है। लेकिन इतवारी साफ-साफ शब्दों में माना कर देती हैं| कारिंदे को सपने में भी यकीन नहीं हुआ कि इतवारी ऐसी बात कह सकता है| सफाईकर्मियों के विद्रोही स्वर को देखकर ठाकुर औतार सिंह सफाईकर्मियों के खिलाफ साजिश रचता है और दलित बस्ती के बीस-तीस लोगों को डकैती के मुकदमे में फंसाकर थाने में बंद करवा देता है। 'घायल शहर की एक बस्ती' कहानी में लेखक ने साम्प्रदायिकता के घिनौने चेहरे का चित्रण किया है। कहानी के माध्यम से नैमिशराय जी यह बताना चाहते हैं कि सांप्रदायिक दंगों से वैसे तो पूरा समाज प्रभावित होता है, लेकिन सबसे ज्यादा प्रभावित दलित ही होते हैं। सांप्रदायिक दंगों के कारण लगाया गया कर्फ्यू किस प्रकार दलितों का जीवन दयनीय बना देता है? लेखक ने 'घायल शहर की एक बस्ती' कहानी में उसका स्पष्ट चित्रण किया है। एक सप्ताह पहले शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया था| शाम को जब अज्जन पत्नी को प्रसव पीड़ा शुरू होती है तो सुमरती दाई तेजी से वहां पहुंचती है। रात होने से पहले ही बच्चे का जन्म हो जाता है| कर्फ्यू के कारण चारों ओर कब्रिस्तान जैसा सन्नाटा था| जब भी जरा सी आहट होती तो सुमंगली अपनी मां से चिपक जाती हैं | सुमंगली के पिता की दो साल पहले दंगे में मौत हो गई थी| तब से मां-बेटी सब्जी बेचकर अपना गुजारा करती थीं। रात में किसी ने नत्थू की रेहड़ी में आग लगा दी। नत्थू दस साल से लकड़ी बेच रहा था। वह भी लकड़ी के साथ जल गया। दंगे के दौरान रफीकन के बेटे की भी किसी ने चाकू से हत्या कर दी थी| वह सड़क पर पंक्चर बनाता था| पिछले दंगे में उसके पिता की मौत हो गई थी, इसलिए इस बार बेटे के

गम में रफीकन ने रो-रोकर अपना बुरा हाल कर लिया है| छत पर बैठा हरिया रफीकन के रोने की आवाज सुन रहा था। हरिया अपनी मुट्ठियाँ भींचता है और अपनी स्व- से संवाद करता है| जब हरिया काम की तलाश में निकला होता है तो कोई उसे गोली मार देता है। सुबह पुलिस हरिया का शव ले जाती है। 'अपना गाँव' नैमिशराय जी की एक लम्बी, सशक्त एवं मार्मिक कहानी है। जिसमें लेखक ने दलितों पर हो रहे अत्याचारों और दलितों की सामूहिक एकता का यथार्थवादी चित्रण किया है। यह कहानी 21 जनवरी 1994 को इलाहाबाद जिले के थुरपुर थाने के दौना गांव में हुई घटना पर आधारित है, जिसमें शिवपति नाम की एक दलित महिला को गांव की मकान मालकिन शोषण किया था | कबूतरी का पति संपत गांव के जमींदार से पांच सौ रुपये कर्ज लेता है और नौकरी की तलाश में शहर चला जाता है। ठाकुर का मंझला बेटा संपत की पत्नी कबूतरी को ब्याज इकट्ठा करने के लिए उसके खेतों में काम करने के लिए कहता है। लेकिन कबूतरी ने उसे मना कर दिया| कबूतरी जलाऊ लकड़ी इकट्ठा करने के लिए जंगल में जाता है। ठाकुर जंगल से घर लौटता है और उसे दोबारा खेतों में काम करने के लिए कहता है। जब कबूतरी ने फिर से इनकार कर दिया, तो ठाकुर के मंझले बेटे सुल्तान सिंह और उसके नौकरों ने कबूतरी पर आमानवीय अत्याचार किए| 'हारे लोग' नैमिशराय की दलितों को किराए का मकान मिलने में आनेवाली हुए परेशानियों और जात-पाँत की भावना में उपजे तिरस्कार की कहानी है । दलित अधिकारी को नए शहर में आने पर किराए का मकान ढूंढने में जिस पीड़ा और अपमानबोध से गुजरना पड़ता है, वह कोई भुक्तभोगी ही समझ सकता है । इस कटु सत्य को यहाँ उजागर किया है। चेतराम कुरील का सेक्शन ऑफिसर के रूप मैं शहर में प्रमोशन होता है। यहाँ उनको किराये के लिए कोई मकान मिलता नहीं है । कसूर इतना है कि वह दलित है और अपने दलित होने को वह छुपाता नहीं ।'अधिकार चेतना' कहानी मेरठ में 30 मार्च, 1994 में बाबा साहब की प्रतिमा लगाने को लेकर पुलिस और दलित युवकों के बीच जो खूनी संघर्ष हुआ था उसी पर आधारित है । यह कहानी एक तरफ तो प्रशासन की सवर्ण परस्ती को सामने लाती है तो दूसरी तरफ, सुविधाहीन दलितों की अधिकार सजगता एकजुटता तथा संघर्षक्षमता को उकेरती है ।'गंजा पेड़' नैमिशराय की प्रतीकात्मक कहानी है। इसमें छोटे से कस्बे में स्लम जैसी दलित बस्ती का चित्रण है । नैमिशराय की 'बरसात' कहानी सवर्ण अत्याचार से मुक्ति की कहानी है। जिसमें लेखक ने दलित जीवन में पति-पत्नी के प्रेम की अभिव्यक्ति के साथ-साथ शहर में रहनेवाले दलित समाज के अभावों का चित्रण किया है।'रीत' दलित नारी यौन शोषण का पर्दाफाश करने वाली सशक्त कहानी है। कहानी में लेखक ने पूंजीपति जमींदार वर्ग किस प्रकार दलितों की बहू-बेटियों की इज्जत के साथ खिलवाड़ करते हैं इसका त्रासदीपूर्ण निरूपण किया है | 'उसके जख्म' कहानी सवर्णों के दमन का शिकार बनी दलित स्त्री की मार्मिक कहानी है । कहानी में कमला एक दलित लड़की है जो अपने बाबा के साथ रहती है। दो बरस पहले कमला की माँ चल बसी थी । कमला अट्ठारह की होती है तो गाँव का ठाकुर उसके साथ शारीरिक शोषण करता है । कमला न्याय के लिए जमींदार के विरुध्द केस करती है।। पुलिस हीरा को केस वापिस लेने के लिए दबाव डालता है लेकिन हीरा अपनी बात पर अटल रहता है। दस महिनों से बाप-बेटी मुकदमे की तारीखों के आसपास झूल रहे थे । ठाकुर कमला के गवाहों को भी खरीद लिया था । कमला का गवाह बहादुरसिंह भी अदालत में बोलता है। जमींदार की खरीदी हुई संपूर्ण व्यवस्था के सामने कमला को विवश होना पड़ता है । हीरा इस सदमे को बर्दाश्त नहीं कर पाता और अदालत में ही मर जाता है । लेखक ने दलित नारी

के शोषण को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है ।'महाशूद्र' आवाजे कहानी-संग्रह की अंतिम कहानी है ।कहानी के माध्यम से लेखक ने मरघट पर दाह संस्कार करनेवाले आचार्य और डोम की वेदना को अभिव्यक्त किया है। 'गाँव' कहानी में लेखक ने गाँव और शहर की संस्कृति का परिचय कराया है |'हमारा जवाब' कहानी जाति व्यवस्था की परतों को उघाइती है । कहानी का नायक हिम्मतसिंह को कुछ नया करने की तमन्ना थी, इसीलिए वह जीवन मंडी में मिष्ठान का खोमचा लगाता है लेकिन सवर्णों को हिम्मतसिंह का मिठाई बेचना रास नहीं आता । एक दलित की इतनी हिम्मत की सरे आम मिठाई बेचे । तीन-चार लोगों ने उसे मिठाई बेचने से मना किया लेकिन हिम्मतसिंह बिना डरे जवाब दे देता है । 'आधा सेर घी' कहानी कर्ज लेने में महाजन गरीब दलित बलवंता का आधा सेर घी भी ले लेता है जो सुमति ने अपने बेटे धन्नालाल के लिए रखा था । उसका यथार्थ चित्रण कहानीकार ने किया है । 'सपने' कहानी महानगरों में दलितों के जीवन को चित्रित करती है । रघु गाँव के जमींदार की है बेगारी को छोड़कर कुछ बनने के लिए शहर आता है । और फुटपाथ पर कप-प्लेटों को बेचता है । शहर में उसका दोस्त लालसुख रघु को पुलिस से रिश्ता बनाये रखने के लिए उसे समझाता था । बिक्री अच्छी होने से वह ज्यादा माल खरीदता है । पुलिस को रिश्वत न देने के कारण शाम को पुलिस की गाड़ी आकर रघु को रंग-बिरंगे कप प्लेटों के सामान को उठाकर गाड़ी में पटक देता है । 'खबर' कहानी में कहानीकार ने महानगरीय जीवन की व्यस्तता, जीवन की असुरक्षा का चित्रण इस कहानी में किया है । रमेश सरकारी विभाग में क्लर्क है और ज्योति एम.ए. करने के बाद प्राइवेट कंपनी में नौकरी करती है । रमेश का ट्रांसफर जब बड़े शहर में होता है तो ज्योति के भीतर कुछ करने की आशा जगी थी । आये दिन होने वाली दुर्घटनाओं की खबर से ज्योति डरती है और अपने पति रमेश को ट्राफिक से संभलकर जाने की हिदायत देती है। पति नौकरी जाता है तो ज्योति का भी जी घबराने लगता है। इसीलिए दोनों पाँच साल पहले शहर में थे उसी शहर में वापिस जाने के लिए रमेश से बात करती है। ट्रांसफर होने से पहले सड़क दुर्घटना में रमेश की मौत हो जाती है । ज्योति के घर लौटने के सपने चूड़ियों के साथ बिखर जाते हैं ।'मजूरी' कहानी सवर्णों द्वारा दलितों का आर्थिक शोषण किया जाता है। उसका सशक्त चित्रण इस कहानी में किया गया है । सुमति दलित परिवार की महिला है । वह अपनी मजदूरी मांगने के लिए अपने मालिक के घर जाती है तो उसे अकाउंटेंट नहीं आया है ऐसा बहाना बनाकर कल-परसों आने के लिए कह दिया जाता है । लेकिन एक दिन सुमति दृढ़ निश्चय करके मालिक के घर मजदूरी मांगने जाती है । दरवाजे पर दरबान उसे रोकता है तो सुमति उसे ठेल कर अंदर चली जाती है। सुमति को अपनी जिद पर अड़ी रहने के कारण मालिक महेश अपने कुत्ते से उसे कटवाता है । सुमति चिल्लाती है लेकिन उसे बचाने नहीं आता। घायल सुमति अपनी झोपड़ी में प्राण त्याग देती है| 'दर्द' कहानी में लेखक ने दलित परिवार का चित्रण किया हैं| 'दर्द' कहानी में लेखक ने दलित परिवार का चित्रण किया है। 'एक गुमनाम मौत' कहानी उपेक्षित स्वतंत्र सेनानी रामेश्वरी के मृत्यु को लेकर लिखी गई है । रामेश्वरी स्वतंत्र सेनानी की पत्नी थी और खुद भी स्वतंत्र सेनानी थी। रामेश्वरी के शवयात्रा में बीस लोग शामिल थे । राजनैतिक दल के कोई प्रतिनिधि शवयात्रा में शामिल नहीं हुए थे। लेकिन उनका पालतू कुत्ता उनकी मृत्यु पर दुःखी हुआ था|

नैमिशराय के साहित्य दलित समाज को अंध विश्वास, अभाव और अपमान के जीवन से मुक्त होने की बोधिसत्व पैदा करती है । दलितों समाज में उत्पीड़न सदियों से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर होता आ रहा है। इससे छुटकारा पाने

के लिए संघर्ष महत्वपूर्ण है । अभाव और पीड़ा के बीच इस दर्द को सहते हुए भी दलित समाज ने शिक्षा जैसे अधिकार हासिल करने और प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने संकल्प का निर्वाह किया है | नैमिशराय जी के कहानियों में सामाजिक परिवेश और जाति व्यवस्था में शोषण के विभिन्न स्तरों का चित्रण किया गया है। दलित चेतना को प्रतिबिंबित करने वाली उनकी रचनाओं ने समकालीन हिंदी साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाई है।

निष्कर्ष :_ 'दलित विमर्श के सशक्त साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय पिछले तीन-चार दशकों से दलित समस्याओं पर लगातार लिखते और सोचते रहे हैं। दलित समाज की हकीकत सामने लाने के लिए उन्होंने साहित्य को अपना माध्यम बनाया। एक लेखक के रूप में मोहनदास नैमिशराय का सफर बहुत आसान नहीं रहा है। दलित आंदोलन और साहित्य उनके जीवन का साहित्य उपजीव्य हैं । उन्होंने कहानियों के माध्यम से दलित समाज के दर्द, संघर्ष, अनुभव और इतिहास को सामने लाने का काम किया है। उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं से जुड़कर दलितों की दुर्दशा को उजागर करने तथा सामाजिक जागृति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दलित साहित्य के निर्माताओं में गिने जाने वाले मोहनदास नैमिशराय की कहानियाँ जातिगत शोषण और सामंतवाद की क्रूरताओं को सामने लाती हैं।मोहनदास नैमिशराय की खासियत यह है कि वे अपनी कहानियों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न जाति और उच्च जाति के लोगों के सामंती वर्चस्व को उजागर करने का काम करते हैं। अपनी कहानियों के माध्यम से मोहनदास नैमिशराय ने सामंती और अमानवीय परंपराओं के खिलाफ दलितों के गुस्से और प्रतिरोध को भी सामने लाया है। बहरहाल, यह कहा जा सकता हैं कि मोहनदास का साहित्य दलित समाज और विमर्श का उपजीव्य साहित्य हैं, जिसमें दलित समाज के अपने अधिकार के प्रति प्रतिगुंज भी हैं और सामन्ती अमानवीयता के प्रति विद्रोह भी |

संदर्भ सूची-

1. स.गौरीनाथ.भारतीय दलित और ओमप्रकाश वाल्मीकि.दिल्ली: अंतिका प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,2023,पृष्ट-41
2. वाल्मीकि,ओमप्रकाश.दलित साहित्य:अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ.दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,2024, भूमिका से संग्रहित

सहायक ग्रन्थ -

1. स. गौरीनाथ.भारतीय दलित साहित्य और ओमप्रकाश वाल्मीकि.दिल्ली:अंतिका प्रकाशन प्रा. लि.,2023
2. बोर्ड,डॉ. देवीदास. दलित कहानी: समय और संवेदना.कानपूर:रोली प्रकाशन,2018
3. सं. दुबे,अभय कुमार. आधुनिकता के आईने में दलित.नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन,2020
4. सक्सेन्ना,राजेश्वर. उत्तर आधुनिक विमर्श और द्वंद्ववाद.दिल्ली:नयी किताब,2019
5. डॉ. हरदयाल.हिंदी कहानी: परम्परा और प्रगति.नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन,2017

6. वाल्मीकि,ओमप्रकाश.दलित साहित्य:अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ.दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,2024
7. यादव,राजेन्द्र.कहानी:अनुभव और अभिव्यक्ति. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन,2017
8. मिश्र,रामदरश.हिंदी कहानी : अंतरंग पहचान. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन,2014

भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्री यथार्थ के प्रश्न: वामा शिक्षक उपन्यास के विशेष संदर्भ में

स्मृति रेखा मल्लिक

शोधार्थी,हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय,असम

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 68 – 73 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

शोध-सार

नवजागरण की शुरुआत से देश में एक नई लहर आई। रीतिकाल के गर्भ से निकलकर साहित्यकार अब समाज की और झाँक रहे थे। भारतेन्दु के प्रयासों से समस्यापूर्ति नाटक, निबंध, कहानियाँ और कविताएँ तो लिखी जा ही रही थी मगर समस्या को लक्ष्य किया जाए तो ये विधाएँ विचार प्रकट करने के लिए पूर्ण नहीं थी। इन विधाओं में लेखकों के शब्द भी सीमित ही रह जाते थे। अंग्रेजों के माध्यम से जब नॉवेल लिखने की प्रथा बंगला और मराठी में हुई तो झट से हिन्दी में भी उसे अपना लिया गया। यही सही समय था जब उपन्यास हिन्दी में लिखे जाने लगे थे और जो साहित्यकार समाज का वास्तविक चित्रण पेश करना चाहते थे उन्हें भी उचित अवसर प्राप्त हुआ। 'वामा शिक्षक' उपन्यास इसी अवसर की एक उत्तम पेशकश है, जिसका लिखा जाना युगपरिवर्तन के प्रारम्भिक आगाज़ के रूप में देखा जाने लगा था। उपन्यास में स्त्री के कई यथार्थ चित्र की प्रस्तुति की गई है जो पाठक को अंत तक अपने में समाए रखता है।

बीज शब्द: नवजागरण, रीतिकाल, भारतेन्दु मण्डल, उपन्यास, स्त्री शिक्षा,परंपरावादी, रूढ़िवाद

मूल– आलेख: अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतवर्ष मुग़लों के शासन में था। इनके स्थायित्व में कई तरह के बदलाव भारतीय सभ्यता में देखे गए जैसे-पर्दा प्रथा का प्रचलन, बाल विवाह की बढ़ती समस्याएँ, बहु-विवाह प्रथा का प्रचलन आदि। भारत में अशिक्षा, फैला अंधविश्वास एवं सवर्ण जातियों के बनाए गए नियम-कानून व पारंपरिक रूढ़िवादी मान्यताओं से ओत-प्रोत समाज निरंतर पिछड़ता चला जा रहा था। चूंकि माहिलाएँ ही तमाम तरह की परंपराओं के केंद्र में थी इसलिए महिलाओं की स्थिति अधिक भयावह प्रतीत होती थी। ऐसी परिस्थिति में समाज के द्वारा बने बनाए ढांचे को पुनः निर्मित एवं व्यवस्थित करने की आवश्यकता थी। अंग्रेजों के राज़ में शुरुआती दौर में कोई खास परिवर्तन सामाजिक स्तर पर तो आए नहीं, फलस्वरूप भारतीय जन जागृति का कार्य बंगाल से प्रारंभ होता है जिसे बंगाल नवजागरण के नाम से भी जाना जाता। बंगाल नवजागरण के जनक राजा राममोहन राय के प्रयासों से सम्पूर्ण देश में क्रांति की लहर आई। इस संदर्भ में इतिहासकार सुशोभन सरकार लिखते हैं- "अंग्रेज़ी राज, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और आधुनिक पश्चिमी संस्कृति का सबसे पहला प्रभाव बंगाल पर पड़ा जिससे एक ऐसा नवजागरण हुआ जिसे

आमतौर पर बंगाल के रिनेसाँ के नाम से जाना जाता है। करीब एक सदी तक बदलती हुई आधुनिक दुनिया के प्रति बंगाल की सचेत जागरूकता शेष भारत के मुकाबले आगे रही।"[1] इससे हिन्दी प्रांत अछूता न रह सका। फलस्वरूप हिन्दी नवजागरण की भी शुरुआत होती है।

राम मोहन राय के प्रयासों से सती प्रथा पर रोक तो लगी ही साथ ही वे स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह और पुनर्विवाह के घोर समर्थक भी रहे। बंगाल में जिस तरह स्त्री स्वतंत्रता का विषय केंद्र में रहा उसी प्रकार हिन्दी क्षेत्रों में भी इन मुद्दों को अहम माना गया। भारतेन्दु हरिश्चंद्र हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत माने गए। भारतेन्दु ने 'भारतेन्दु मण्डल' के नाम से एक गोष्ठी भी बनाई जिससे साहित्य के माध्यम से समाज सुधार का प्रयत्न किया जा सके। रीतिकाल की दरबारी संस्कृति से विमुख होकर ये साहित्यकार अब समाज का दर्पण बनने को प्रस्तुत थे। भारतेन्दु के संदर्भ में कर्मेन्दु शिशिर अपनी किताब में लिखते हैं-"उन्होनें राष्ट्रीयता को राजनीतिक भावना तक सीमित नहीं रखकर उसे जनता की व्यापक और सामयिक समस्याओं से जोड़ दिया। स्त्री शिक्षा,विधवा-विवाह,जन शिक्षा,विदेश यात्रा जैसे सामाजिक सवालों को जोड़कर राष्ट्रीय चेतना को व्यापक और जनवादी स्वरूप प्रदान किया। यही कारण था कि वे जनता के साहित्य की बात करते थे और जनता के बीच साहित्य ले जाने को कटिबद्ध और प्रयत्नशील रहे।"[2] नवजागरण से साहित्यिक गतिविधियों में भी परिवर्तन आने लगे थे। अब प्रारम्भिक दौर के लेख एक ही तरह के विचारों से अभिप्रेरित थे जिनमें राष्ट्र हित, स्त्री शिक्षा, रूढ़ियों व समांती व्यवस्था का विरोध आदि विषयों को मुख्य से रूप से प्राथमिकता दी गई।

अंग्रेजों के आगमन से अंग्रेजी 'नॉवेल' परंपरा भी भारत में आई तब अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने वाले व्यक्ति इसका अनुवाद भारतीय भाषाओं में प्रयोग के रूप में करने लगे थे। वहीं बंगाल के बँकिंचन्द्र ने अंग्रेजी भाषा में पहले 'राजमोहंस वाइफ' नामक नॉवेल लिखकर पहले भारतीय अंग्रेजी नॉवेलिस्ट बनने की खिताब हासिल की। नवजागरण काल की एक उम्दा साहित्यिक गद्य विधा के रूप में 'उपन्यास' लिखने की शुरुआत बंगला तथा मराठी भाषा में प्रथमतः हुई। तत्पश्चात हिन्दी भाषा में भी उपन्यास लिखे जाने लगे थे। लोकजागरण के लिए कविता,कहानी,आलोचना,निबंध व नाटक के साथ-साथ उपन्यास को भी एक सशक्त माध्यम के रूप में देखा जाने लगा था। वैभव सिंह इस संदर्भ में लिखते हैं- "भारतीय भाषाओं के आरंभिक उपन्यास भी राष्ट्रीय जागरण व सामाजिक प्रगति की आकांक्षाओं के विविध रूपों को प्रतिबिंबित करते हैं।"[3] ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रारम्भिक उपन्यासों की महत्ता अधिक ही रही है। इस कड़ी में 'वामा शिक्षक' उपन्यास प्रारम्भिक दौर की महत्वपूर्ण स्त्री संबंधी उपन्यास है। मुंशी कल्याणी राय व मुंशी ईश्वरी प्रसाद का यह उपन्यास 1872 ई. में प्रकाशित हुआ। वामा शिक्षक की भूमिका में लिखा गया है कि अंग्रेजी सत्ता के कायम होने पर भारतवर्ष में पुनः लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा पर अधिक ध्यान दिया जा रहा था जिसके चलते एक पुस्तक 'मिरतुल ऊरुस' का जिक्र किया गया है। इसे मुस्लिमों की लड़कियों के पढ़ने हेतु लिखा गया था। कुछ इसी प्रकार की किताब लिखने का प्रयास लेखक करतें हैं। उपन्यास की भूमिका में इसकी पुष्टि होती है -"हिन्दूओं व आर्यो की लड़कियों के लिए अब तक कोई ऐसी पुस्तक देखने में नहीं आई कि जिससे उनको जैसा चाहिए वैसा लाभ पहुंचे और पश्चिम उत्तर देशाधिकारी श्रीमन्महराजाधिराज

लेफ्टिनेंट गवर्नर बहादुर की यह इच्छा है कि कोई पुस्तक ऐसी बनाई जाए कि उससे हिन्दूओं व आर्यों की लड़कियों को भी लाभ पहुंचे और उनकी शासना भी भली भांति हो।"[4] इस प्रकार से वामा शिक्षक उपन्यास की रचना हुई अपितु प्रारम्भिक दौर के लगभग सभी उपन्यास सामाजिक ही रहें एवं स्त्री के समस्याओं को उजागर करने वाले उपन्यास अधिक से अधिक लिखे गए। यह उपन्यास एक तरफ़ तो रूढ़िवादी मानसिकताओं को लिए आगे बढ़ती है और अपनी अंतिम परिणति तक पहुँच कर भी उन मानसिकताओं में निश्चित बदलाव देखा नहीं जा सकता। वे स्त्री स्वतंत्रा व शिक्षा के खिलाफ़ है। परंतु इसका एक दूसरा पक्ष पढे-लिखों का वर्ग है। ये वर्ग स्त्री शिक्षा की महत्ता को रेखांकित करता हुआ अपने पात्रों को सशक्त बनाने की चेष्टा करता है जिसमें उन्हें सफलता प्राप्त होती है या नहीं ये उपन्यास के सार को पढ़कर जानें-

लाला भगवानदास मेरठ के निवासी थे उनके दो पुत्र हुए बड़े का नाम जमुनादास और छोटे का मथुरादास। बड़ा बेहद हठी और ढीठ वहीं छोटा शांत सीधा-साधा, पिता की आज्ञा का पालन करने वाला। दोनों को फारसी पढ़ाया गया। पिता ने अंग्रेजी पढ़ने को कहा तो जमुनादास मारे आलस के इससे अधिक पढ़ने की इच्छा नहीं रखते थे। परंतु मथुरादास फारसी के बाद अंग्रेजी की शिक्षा भी लेने लगा। भगवानदास ने दोनों भाईयों का विवाह करवाया। विवाह के कुछ वर्ष के पश्चात दोनों भाईयों के ही घर दो-दो लड़कियों का जन्म होता है। जमुनादास ने अपनी लड़कियों का नाम राधा व पार्वती रखा एवं मथुरादास ने अपनी लड़कियों के नाम रखे गंगा व किशोरी। भगवानदास ने जमुनादास की नौकरी कचहरी में पच्चीस रुपए की लगवा दी और मथुरादास को गाँव की जिम्मेदारी संभालने को दे दी।

लड़कियां थोड़ी बड़ी हुई तो उनके शिक्षा के प्रबंध के लिए मथुरादास जमुनादास के पास गए। जमुनादास अपनी लड़कियों के शिक्षा के खिलाफ़ थे उन्होंने कहा –"लड़कियों के पढ़ाने लिखाने की चाल तो नहीं है जो हम लड़कियों को पढ़वाएँ,लिखवाएँ तो लोग नाम धरेंगे और ताने देंगें लोगों से नीची आँखें करनी पड़ेगी।"[5] आस-पड़ोस के लोगों की निंदा के विषय में सुनकर मथुरादास ने उसे भारत की महान पढ़ी-लिखी स्त्रीयों का उद्धारण पेश किया। जिसमें रुकमणी का कृष्ण को पत्र भेजने का उल्लेख करता है, मंडन मिश्र की स्त्री इतनी शस्त्रार्थ थी की शंकराचार्य तक को उसने पराजित कर दिया था और मीराबाई को कौन नहीं जनता वह अपनी कविताओं से कितनी प्रसिद्धि पा चुकी है। मथुरादास के समझाने पर भी वह अड़ा ही रहा,वह फ़िर बोला "मैंने माना कि लड़कियों का पढ़ना लिखना बहुत अच्छा है और पढ़ाने की चर्चा हो गई है अपर जो मैँ लड़कियों को पढ़ाऊँ लिखाऊँ तो मुझको क्या लाभ होगा-लड़कियां पराए घर का धन है विवाह हुए पीछे अपने अपने घर को चली जाएंगी फ़िर मैँ अपना रुपया उनके पढाने लिखाने में क्यूं खर्च करूँ और झगड़े में पड़ूँ।"[6] मथुरादास ने अब केवल अपनी लड़कियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की और ज्ञानों को बुलाया जो विधवा ब्राह्मणी थी। उसके पति के मृत्यु के पश्चात बच्चों को पढ़ाकर खुद का जीवन निर्वाह करती थी। मथुरादास की पत्नी शिक्षा का तो समर्थन करती थी परंतु वह सांसारिक नियमों से बंधी बंधाई भी थी। उसे गंगा के विवाह की चिंता होने लगी। जब उसने गंगा के विवाह का प्रस्ताव अपने पति के समक्ष रखकर वह बोली -"छुटपन में विवाह करने का पुन्य बहुत होता है और बुराई

किसी तरह नहीं-बड़ी उम्र में विवाह किया और रुपया भी खर्च हुआ और पुन्य भी न मिला।"[7]तब ज्ञानों भी वहाँ मौजूद थी। ज्ञानों ने अपना ही उद्धारण देकर उसे बताया कि उसका भी बाल विवाह हुआ था और पति के मृत्यु के पश्चात कोई आपके प्रति संवेदना नहीं रखता न घरवाले और न ही ये समाज। ज्ञानों लगे हाथ ये भी गिनवाने लगी कि आस पड़ोस में ही कितनी बाल विधवाएं है- जिनमें हरीराम ब्राम्हण की पोती नौ वर्ष में विधवा हो गई थी, जवाहिर बनिये की बेटी का बाल विधवा होना आदि कई आस-पड़ोस नाते रिश्ते के उद्धारण पेश कर दिए इससे अंत में मथुरादास की पत्नी को सब समझ में आ गया। लेकिन जमुनादास अपनी बेटी राधा का विवाह करना चाहते थे जो गंगा से उम्र में छोटी थी मथुरादास ने फ़िर समझाने का प्रयास किया ""मेरी समझ में तो अभी ब्याह नहीं करना चाहिए राधा की उमर आठ वर्ष की है अभी जल्दी क्या है?"[8] विवाह तो जमुनादास को करवाना था सो उसने तो करवा ही दी। राधा के विवाह में गंगा ने हर एक एक पैसा जो कुछ भी शादी में खर्च हुआ उसका हिसाब किताब बही खाते में लिखकर रखा और राधा की शादी के बाद सारा हिसाब किताब जमुनादास को सौंप दिया। हिसाब किताब देखने पर जमुनादास को ये आभास हुआ कि अन्यथा उसने कितने पैसे गवाए जो उधारी में वे महाजन से लेकर आए थे। यदि गंगा ने हिसाब न रखा होता तब न जाने पैसों का हिसाब भी उसे न मिल पाता। यहाँ कुछ वर्ष के बाद मथुरादास की पुत्री गंगा के सयानी होने पर उसका भी विवाह राधा के ससुराल के निकट ही हुआ। न तो मथुरादास ने कोई व्यर्थ पैसे खर्च किए ना ही कोई अव्यवस्था। गंगा ने तो अपने सूझबूझ से अपने घर को ठीक से संभाल लिया। उसका ससुर फिरोज़ाबाद में नौकरी करते थे,उनकी इच्छा थी कि उनका बेटा चालीस-पचास रुपए कमाए तो वो अपने घर ही आकार रहें। गंगा ने अपने पति सीताराम से जब अपने ससुर की इस इच्छा के विषय में बोला तो उसने रिश्वत लेने का सोचा। गंगा ने इस सुझाव का पूर्वजोर विरोध किया और मन लगाकर काम करने की सलाह दी। खैर बाद में सीताराम ईमानदारी से काम करने लगे जिससे उसकी पद उन्नति हुई। बाद में तहसीलदार से उनकी नहीं बनी तो नौकरी से इस्तीफ़ा देकर पत्नी के कहने पर दुकान खोली। अब वे शहर के अमीरों में गिने जाने लगे थे। परंतु ईधर राधा की बेवकूफी के चलते उसका घर संसार सब तहस नहस हो रहा था। जब उसके घर बेटे का जन्म हुआ तो उसके चटोरेपन से उसके बेटे की जान गई। उसे लगता उसके पति ने हकीम को बुलवाकर बेटे की दवा कारवाई थी जबकि उसे झाड़-फूँक की जरूरत थी इसलिए वह मारा गया। गंगा जो उस उससे मिलने गई थी उसने उसे बताया "स्याने न्योतों से कुछ नहीं होता वह बड़े ठग होते हैं-उन्हें झूठी मूठी छू छू करने के सिवा और कुछ नहीं आता-भला सोचो तो सही कि कहाँ रोग और कहाँ झाड़ फूँक-यह दुष्ट बड़े हत्यारे होते हैं एक डॉ दवा दस्तों की अपने पास रखते हैं और वही बे सोचे समझे बालकों को देते हैं लग गई तो तीर नहीं तो तुक्का कभी ऐसा होता है कि जो बालक मरता न हो तो उनकी दवा से मर जाता है।"9 राधा को क्या समझ आया ये तो स्वयं राधा ही जानती होगी। उसके बाद उसके दो और पुत्र हुए। पति तुलसीराम दोनों को टीका लगवाना चाहते थे मगर राधा इसके खिलाफ़ थी। इस बार तो गंगा भी उसके अंधविश्वास को न तोड़ सकी। उसका बड़ा पुत्र दयाराम जब अपने साथवालों के साथ खेल रहा था तभी उसे टीका लगवाने वालों ने पकड़कर टीका लगवा दिया था। राधा ने तो गालियों की वर्षा कर दी थी उस दिन उन लोगों पर। उस वर्ष ऐसी शीतला निकली की उसके छोटे बेटे की मृत्यु टीका न लगवाने के वजह से हो गई। संतान के मृत्यु के दुख में राधा का पति अब अपने बड़े पुत्र को लेकर हमेशा सजग रहा लेकिन फ़िर मूर्खता का

परिचय देते हुए एक दिन राधा ने उसे एक विवाह में ले जाने के लिए गहना पहनावा दिया। परिणाम स्वरूप गहने के लोभ ने उसकी जान ही ले ली और फ़िर राधा आजीवन संतानहीन ही रही। अपने भाग्य पर रोती रही। बीतते समय के साथ जमुनादास व मथुरादास की छोटी लड़की पार्वती और किशोरी का भी विवाह हुआ। किशोरी पढ़ाई के साथ-साथ सीने पिरोने में भी बहुत अच्छी थी। जब किशोरी माँ बनने वाली होती है उसके कुछ ही महीने पूर्व अचानक हैजे से उसके पति की मृत्यु हो जाती है। गंगा ने चिट्ठी लिखकर उसे ज्ञानों की तरह बनने को कहा। जिस तरह ज्ञानो अपने पति के मृत्यु के बाद भी अपने आत्मसम्मान की रक्षा करती है और अपने ज्ञान को दूसरों तक पहुंचाती है। ठीक उसी तरह तुम भी सदैव अच्छे कार्यों में अपने मन को लगाए रखना। चूंकि वह पढ़ी लिखी समझदार एवं गुणवान थी उसने अपने गृहस्थी को संभाला। साथ ही बेलबूटे व सीने पिरोने का काम करके वह अपने परिवार का लालन पोषण कर लेती थी। किशोरी का अब पूरा ध्यान अपने पुत्र की ओर ही था एक बरस का हुआ तब उसे टीका भी लगवा दिया, तबीयत खराब होने पर उसके डॉक्टर खाने ले जाकर भी दिखाया,अंधविश्वास टोना टोटका से उसे दूर रखा, खूब पढ़ाया लिखाया और अपने सीने पिरोने के काम से परिवार को भी चलाया। उसका बेटा दिल्ली शहर का सबसे रईस आदमी बनकर निकला जिसे बाद में सरकार और रईसों ने म्यूनिसिपल कमिश्नर नियुक्त किया।

पार्वती का जब विवाह हुआ था तब उसका पति केवल तेरह बरस का था। एक रोज़ वह अपने साथियों के साथ नहर में नहाने को गया वही बहकर उसकी मृत्यु हुई थी। पार्वती न पढ़ी लिखी थी न ही अन्य किसी प्रकार के काम में उसकी कोई दिलचस्पी थी। उसके कहे अनुसार उसके मन पसंद की चीजें उसे दी जाती जो मन करता सो वही किया करती। जमुनादास की पत्नी ने उसे पाठ पढ़ाया कि तू अकेली रहेगी और अपने पति की संपत्ति अपने नाम करवा लेगी तो खूब मज़े में रहेगी। पार्वती ने ठीक वैसा ही किया अपने नाम पर संपत्ति का बंटवारा करके अलग हो गई। आगे होना क्या था किसी मुगलानी के द्वारा ठगी गई और अपने सारे पैसे गवा दिए। उसके ससुराल वालों ने उसे अपने पास फ़िर रख तो लिया मगर अब उसकी एक न चली।

निष्कर्ष:- शिक्षा के अभाव से गंगा और किशोरी सा जीवन कभी राधा और पार्वती ने नहीं जिया। इन अभावों की पूर्ति आप किसी भी प्रकार से नहीं कर पाते। सही समय पर अपने ज्ञान का प्रयोग कर व्यक्ति स्वयं को बुरी से बुरी परिस्थिति से भी निकाल सकता है। उपन्यास में लेखक ने ज्ञानों नामक महिला शिक्षिका को चुना जिससे उपन्यास अधिक व्यवस्थित लगने लगती है। गंगा एवं किशोरी के व्यक्तित्व के निर्माण में शिक्षक की भूमिका ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही। मथुरादास के रूप में लेखक ने समाज में फ़ैले कुरुतियों का विरोध और लड़कियों के शिक्षा के प्रति जागरूकता फैलाने का प्रयास किया है। वे सुधारवादी विचारों से परिपूर्ण पात्र थे। ज्ञानों व मथुरादास जैसे पात्रों के संयुक्त प्रयास से उपन्यास को सही दिशा प्राप्त होती है। वहीं लेखक ने जमुनादास जैसे पात्र का उपन्यास में निर्माण कर एक ऐसे व्यक्ति को चित्रित किया है जो स्वयं अधिक पढ़ा-लिखा नहीं है। मगर जो कम पढे लिखे या अशिक्षित व्यक्ति होते हैं उनकी आकांक्षा अपने संतान को उनसे बेहतर शिक्षा व अवसर देने की होती है जिसमें जमुनादास पूरी तरह से नाकाम साबित होते हैं। अपनी भावी पीढ़ी को वे सक्षम बनाने में असफ़ल रहे हैं। उपन्यास में डिटेलिंग पर अधिक काम किया गया है जैसे दो बहनों

के बीच पत्रात्मक संवाद उनकी अच्छी परवरिश एवं शिक्षा को दर्शाती है, रिश्वत खोरी, टीका लगवाने के महत्व को दर्शाया गया, अंधविश्वास से होने वाले प्रभाव को भली-भाँति प्लॉट किया गया, स्त्रीयों के आभूषण प्रियता को दर्शाया गया आदि। इस तरह के अनेक डिटेलिंग का सहारा उपन्यास में लिया गया है। निसंदेह इस उपन्यास के माध्यम से एक बेहतर समाज निर्माण करने का प्रयास लेखकों द्वारा किया गया जिसका प्रारम्भिक दौर में लिखा जाना ही प्रगति के सूचक के रूप में देखा गया है।

निष्कर्ष :_आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी प्रदेश में राष्ट्रीय आंदोलन के साहित्यिक मोर्चे पर सामने आये। उन्होंने साहित्य को लोक जीवन से जोड़ने की मांग कर साहित्य को जनसमस्याओं से जोड़कर देखा। उन्होनें अपना लेखन जिन प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में किया, वे राष्ट्रीय अस्मिता और राष्ट्रीय परम्परा से सम्बन्धित थे। उन्होंने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के मूल में निहित आर्थिक कारणों को उजागर करते हुए राजनीतिक आंदोलनों की जरूरत को समझा। उन्होंने न केवल भारतीय जनता की आर्थिक स्थितियों को समझा बल्कि उसके लिए उत्तरदायी ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के चरित्र को भी उजागर किया। इस विवेचन में शुक्ल जी कृषक वर्गों के संगठन के प्रति तो सचेत दिखाई देते हैं किन्तु स्वाधीनता आंदोलन में मजदूरों की भूमिका को ठीक से रेखांकित नहीं करते। वे स्वाधीनता आंदोलन और उस दौर की राजनीतिक गतिविधियों को बहुत निकट से देख रहे थे। अपने साम्राज्यवाद विरोधी साहित्य लेखन में शुक्ल जी ने राष्ट्रीय चरित्र संबंधी प्रश्नों का विवेचन किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना था कि किसी भी राष्ट्रीय गौरव का महत्वपूर्ण आधार है इतिहास। बिना इतिहास के राष्ट्र का स्वरूप संभव नहीं और न उसकी पहचान। शुक्ल जी का सारा लेखन स्वाधीनता आंदोलन की प्रेरणा और प्रभाव से जुड़ा हुआ है। उस समय में अंग्रेजों ने जब यह प्रचारित कर रखा था कि भारत एक असभ्य देश है, तो आचार्य शुक्ल ने यह महसूस किया कि भारतीयों में आत्म-गौरव का बोध जगाने के लिए अपनी परंपराओं के व्यवस्थित ज्ञान से परिचित होना अत्यंत आवश्यक है। इस साहित्यिक संघर्ष का उत्कर्ष 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' है। यह अत्यन्त रूचिकर है कि शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास के चरणबद्ध विकास को जिस तरह व्याख्यायित किया वह निश्चित रूप से विद्यार्थियों की जरूरतों को उन संदर्भों में देखकर लिखा जिन्हें राष्ट्रीय आंदोलन ने पेश किया था। कुल मिलाकर कहा जाये तो साहित्य के प्रति आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की अवधारणों के निर्माण में और उनकी आलोचना दृष्टि के विकास में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

संदर्भ-ग्रंथ

1. सरकार, सुशोभन. बंगाल रिनेसॉ एण्ड द अदर एसेज़. नयी दिल्ली: पीपल्स पब्लिशिंग हाउस,1970.अंग्रेजी
2. शिशिर, कारमेंदु. नवजागरण की निर्मिति. दिल्ली:अनन्य प्रकाशन,2022.हिन्दी, पृष्ठ संख्या 97
3. सिंह, वैभव.भारतीय उपन्यास और आधुनिकता. पंचकूला: आधार प्रकाशन, 2013. हिन्दी,पृष्ठ संख्या 61
4. प्रसाद, मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी,भूमिका

5. प्रसाद, मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी, पृष्ठ संख्या 13
6. प्रसाद, मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी, पृष्ठ संख्या 15
7. प्रसाद, मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी,पृष्ठ संख्या 21
8. प्रसाद, मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी, पृष्ठ संख्या 31
9. प्रसाद, मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी, पृष्ठ संख्या 76

सहायक-ग्रंथ

1. सरकार, सुशोभन. बंगाल रिनेसॉ एण्ड द अदर एसेज़. नयी दिल्ली: पीपल्स पब्लिशिंग हाउस,1970.अंग्रेजी
2. शिशिर, कारमेंदु. नवजागरण की निर्मिति. दिल्ली:अनन्य प्रकाशन,2022.हिन्दी
3. सिंह,वैभव.भारतीय उपन्यास और आधुनिकता. पंचकूला: आधार प्रकाशन, 2013. हिन्दी
4. प्रसाद, मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी
5. प्रसाद,मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी
6. प्रसाद,मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी
7. प्रसाद,मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी
8. प्रसाद,मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी
9. प्रसाद,मुंशी ईश्वरी व राय, मुंशी कल्याणी. वामा शिक्षक. नई दिल्ली: नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2009. हिन्दी

उसकी खोज

कृष्णमोहन झा

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय, असम

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 74 –78 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

यों समृद्धि से भरा-पूरा था बचपन का वह आकाश

सिर्फ़ एक चीज़ थी जो नहीं थी हमारे पास

जैसे चूता हुआ एक घर था

धुएँ में हाँफता एक लालटेन था दालान पर लटकाने के लिए

दवा की शीशी से बनाई गई एक डिबिया थी
जो रसोई के बाद
ताख पर ऐसे रखी जाती थी
कि घर के साथ आंगन भी प्रकाशित रहे
ढहता हुआ एक कुआँ था
जिसमें एक गरइ मछली चक्कर काटती रहती थी दिन-रात
गुड़ियाम में प्राय: भूखे दो बूढ़े बैल होते थे बँधे
जिनकी सजल आँखें विकल रहती थीं हमेशा
रसोई में
मिट्टी के दो चूल्हे और कुछ बर्तन थे
तुलसी का चौरा था आंगन के एक कोने में
साँझ में जिसकी पत्तियों को टूँगने से पहले चुटकी बजानी होती थी
ड्योढी पर कटहल का एक गाछ था
जिसके केसरिया पत्ते से हम अपने खरगोश बनाते थे
मुंडेर की ओर अग्रसर पोए की लतर थी छप्पर पर
जिसके पके बीजों के गुच्छे से
हम अपनी एड़ियाँ रंगते थे
ठाकुरबाड़ी के पीछे कपास के दो-चार गाछ भी थे
जिसकी रूई से दिन भर
दादी सूत कातती रहती थीं पीतल की तकली पर

कुदाल थी एक
जो घिस-घिसकर खुरपी बन गई थी
देहरी पर ठंडे पानी की एक सुराही थी रखी
फूल के छोटे लोटे थे दो

और एक प्रागैतिहासिक कालीन छाता भी था

इनके अतिरिक्त

दादी की रहस्यमयी पोटली थी

जिसमें इतनी बड़ी दुनिया

अपने हाथ-पैर समेटकर छुपी रहती थी

और कभी न मिटनेवाली चिर-अतृप्त भूख थी हमारी

यानी उजड़ी हुई एक संपन्नता थी हमारे पास

सिवा उस मर्मांतक खालीपन के

जिसे झेलते हम सब थे

लेकिन उसके बारे में कभी कुछ बोलते नहीं थे

पता नहीं उस दिन उस घड़ी उस समय वह अप्रत्याशित क्षण

किस बाँबी किस सुरंग किस कंदरा से निकलकर

मेरी जिह्वा पर बैठ गया था आकर

जब दादी से जाकर मैंने पूछा था--

मेरी माँ कहाँ है दादी ?

माँ को कभी देखा नहीं था मैंने

घर में नहीं थी उसकी एक भी तस्वीर

वह पिता के अवसन्न मौन में चुपचाप बैठी रहती थी

या हमारे लिए उत्पन्न

स्त्रियों की दयालुतापूर्ण आँसुओं में छलछला आती थी

यह बात ज़रूर सुनायी देती थी

कि अलग-अलग मात्रा और विभिन्न संयोजनों में

तरह-तरह से वितरित थी वह हम भाई-बहनों में

लेकिन अब

उसे साबुत देखने की मन में उठ रही थी अजीब और उत्कट धुन

दादी ने भाँप लिया उसी छन

कि उसका छोटका पोता बासी रोटी और गुड़ से बड़ा हो गया है

समेटकर मुझे पुचकारते हुए उसने कहा-

बेटा, तुम्हारी माँ नहाने गई है, उतरबरिया धार...

उतरबरिया धार !

पता नहीं कहाँ किधर कैसी धार थी वह

जहाँ से नहाकर लौटने में इतने दिन लग रहे थे माँ को

उसकी राह देखते-देखते मेरे जोड़ टटाने लगे

पेट में मरोड़ उठने लगी भूख से

और फिर पता नहीं कब और कैसे सो गया मैं

अगले दिन

आम और कटहल के गाछ के पीछे से सुबह निकली धीरे-धीरे

फिर सूरज बैलों की घंटियों को टुनटुनाता हुआ

खेत जोतने लगा मेड़ बाँधने लगा

फिर घरों की मुंडेरों पर दिन पगड़ी लपेटकर बैठ गया

और फिर साँझ बैलगाड़ी के पीछे-पीछे दबे पाँव

पहुँच गई गाँव

फिर रात हुई फिर सुबह और दोपहर और फिर शाम

फिर अगले दिन दुपहर में

जब बड़ी बहिन सुस्ता रही थी करके घर के काम
उससे सटकर बैठते हुए फुसफुसाकर पूछा मैंने-
दीदी, नहाकर कब लौटेगी माँ ?

चौंककर शीतलपाटी पर उठ बैठी वह
उसकी आँखों में कुछ भय, संशय और प्रेम की सजलता थी
मेरे रूखे-सूखे बाल पर हाथ फेरते हुए कहा उसने-
बाबू क्या चैहिये? लेमनचूस खाओगे ?

नहीं
लेमनचूस नहीं
मुझे माँ चाहिए थी
या कम से कम चाहिए थी उसकी कोई भी ख़बर

मैंने देखा कि भगवती-घर की शीतल देहरी पर
छोटकी दीदी कनिया-पुतरा से खेल रही थी
उसके बगल में जाकर मैं चुपचाप खड़ा हो गया
मेरे उदास चेहरे को देखते हुए उसने
अपने खिलौने की डलिया को एक ओर सरका दिया
और बोली- आओ

उसके पीछे-पीछे चलते हुए
हम अपने टोले से बाहर आ गए
बाँस के एक जंगल को पार करते हुए
एक पेड़ के पास आकर हम दोनों रुक गए

तब बहिन ने धीरे से मुझे कहा-

उधर देखो बाबू!

मैंने कहा क्या?

उसने कहा-जिसे तुम खोज रहे हो

मैंने कहा यह तो बबूल का पेड़ है दीदी

उसने कहा- ऊपर देखो न

मैने कहा ऊपर भी तो पेड़ ही है

इस बार झुककर अपनी उँगली से मुझे दिखाते हुए उसने कहा-

उस टहनी पर बैठी हुई तुम्हें माँ नहीं दिख रही?

मैंने कहा वह तो चिड़िया है दीदी!

उसने कहा- हाँ, हमारी माँ अब चिड़िया बन गई है

नाम है उसका नीलकंठ

वह अब बबूल के इसी पेड़ पर रहती है

मैं आश्चर्य से देख रहा था अपनी उस माँ को

जो अब चिड़िया थी

और जो ऊपर से हमें निहार रही थी

और जो फिर भी हमारे क़रीब नहीं आ रही थी

उसे एकटक देखते हुए

मैं उस गाछ की ओर बढ़ा

और जैसे ही उसके नज़दीक पहुँचा …

ऑटो! तुम हो ना वहीं...

विभावरी

सहायक अध्यापक, भारतीय भाषाएँ और साहित्य, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 79 – 80 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

मुझे पता है, तुम्हें पता है और हम जैसे तमाम लोगों को पता है कि
घर के बाहर हर रोज़ जमी बर्फ़ हटाना
कितनी ही बार हर रोज़ अपने जीने की राह बनाना है

या फिर लरज़ती उँगलियों में
उन हथेलियों की ऊष्मा तलाशना
जो अपनी गर्माहट सहित महफ़ूज़ हैं अब
दिल के उस विशेष कोने में हमेशा के लिए

मुझे पता है तुम सोन्या की चीज़ें नहीं हटाना चाहते अपने घर अपने आसपास से
कितना अजीब है ना कि कोई व्यक्ति इस दुनिया की सीमाओं के परे जाकर भी
हमारे सबसे ज़्यादा क़रीब हो जाता है

मैं जानती हूँ, तुम जानते हो और हम जैसे तमाम लोग जानते हैं कि यह सच है

बचपन में मुझे बिल्लियाँ डरावनी लगती थीं,
अब मोहक लगती हैं
उम्र के इन बरसों में मैंने जाना है
कि बिल्लियाँ जीने का सबब भी हो सकती हैं
और एक ऐसे जीवन की उर्वर शक्ति भी, जो सिर्फ़ ख़ुद के लिए नहीं है

मारिसॉल तुम्हारी बिल्ली को दो बार टूना खिलाती है

और उसकी निजता का सम्मान करती है, जैसा तुम चाहते थे

तुम ठीक कहते हो ऑटो

यह दुनिया मूर्खों से भरी है, बेशक हम भी उनमें से एक हैं

हो सके तो टॉमी की मूर्खता के लिए उसे माफ़ करना

कई बार कुछ चीज़ें ना सीख पाना ही हमारे दायरे के भीतर होता है

और देखो मारिसॉल आज भी टॉमी को शेवी नहीं चलाने देती

सिर्फ़ इसलिए नहीं कि वह मूर्ख है

बल्कि इसलिए कि वह तुम्हारे कहे का सम्मान करना जानती है

तुम्हें याद है उस सालसा का स्वाद,

जो मारिसॉल ने तुम्हें पहली बार मिलने पर खिलाया था!

कितनी ही बार खाना सिर्फ़ खाना नहीं होता,

दो लोगों के बीच बने संबंध की डोर भी तो होता है.

अब तो तुम्हें भी पता है न,

कि मारिसॉल तुमसे काम होने के कारण तुम्हारे लिए खाना नहीं लाती

वह ये करती है क्योंकि वह

तुम्हारे भीतर की उदासी को पढ़ सकती है तुम्हारे अक्खड़पन में...

तुम जानते हो, मैं जानती हूँ और हम जैसे तमाम लोग जानते हैं कि

ज़िंदगी की कड़वाहट कई बार हमारी ऊपरी परतों पर वैसे ही जमी होती है

जैसे तुम्हारे दरवाज़े के बाहर हर रोज़ जमी बर्फ़

तुम जानते हो ऑटो कि मारिसॉल जैसे लोग भी 'ऑटो' होते हैं कई बार

आपकी ऊपरी परत की कड़वाहट को हर रोज़ खुरचते हैं अपनी कोशिशों से

और एक रोज़ आप पाते हैं उनमें अपना ही अक्स!

मैं हूं एक कविता!!!

सैयदा आनोवारा खातून

विश्व नाथ इकाई (असम), शहर समता महिला काव्य मंच

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 80 –81 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

दिल के भावनाओं से निकल कर,

कलम के स्याही बनकर

शब्द के सुंदर रुप लिए बन जाती हूं

कविता !!!

हां! मैं हूं एक कविता!

मैं एक प्रेरणा भी हूं!

मैं एक आशा भी हूं!

एक विद्रोह भी हूं!

रोशनी भी हूं

ज्वालामुखी भी हूं!

कवि के अल्पनाओं से निकलकर

कलम के स्याही बन कर शब्द के सुंदर रुप लिए

मैं बन जाती हूं

कविता!!!

हां! मैं हूं एक कविता !

मैं जल से नहीं ,

मैं मिट्टी से नही

मैं आग से नहीं,

ईंट और

पत्थर से भी नहीं

मैं जन्मी हूं कवि के कल्पनाओं से ,

मन के भावनाओं से

दर्द के गहराईयों से।

मैं समाज को निर्माण करता हूं!

भटकों को

सकारात्मक दिशा में राहें दिखाता हूं।

धर्य और साहस का पाठ पढ़ाता हूं।

हां!मैं हूं एक कविता

कवि के कल्पनाओं से निकलकर कलम के स्याही बन कर

शब्द के सुंदर रुप लिए

बन जाती हूं

कविता!!!

हां! मैं हूं एक कविता।

हाँ ! मैं हूं एक कविता।

***

ड्रीम गर्ल्

प्रो. दिलीप कुमार मेधि

प्राध्यापक, हिंदी विभाग, गुवाहाटी विश्वविद्यालय

Received October 3, 2024 | Accepted November 11, 2024 | Published Online April 11, 2025

Published Paper URL: https://kameng.in/issue_index.php

Volume 1|Issue 1| Edition 1 |Page 81 –89 | Peer reviewed Journal | July- December, 2024 | kameng.in

"स्नेहिल।”

“क्या हुआ?”

स्ने- हि -- - ल!”

"अरे भाई जरा गिन लो, सबलोग आए कि नहीं?”

"मैं क्यों?”

“अरे बाबा! तुम ही तो हो सबकुछ।"

"अरुणाचल की वह लड़की आई कि नहीं?”

"कौन? जोरम आनिया ताना ?"

“हाँ।”

“वह आई है। पीछे बैठी हुई है।"

"हाँ! हाँ ! सबलोग आ गए हैं।"

"अरे ड्राइवर जी! थोड़ा सा वॉल्यूम बढ़ा दीजिए।”

"अरे पाइलट जी! थोड़ा आहिस्ते चलाइए। गिर जायेंगे।”

"अरे गिरोगे तो क्या होगा? थोड़ा संभाल के गिरना ।" हॉ भाई, किसी की गोद में ही गिरना ।" 'अरे नीता ! स्नेहिल को बैठने दो ना । गिर जाएगा ।" 'सीट नहीं है । मैं कहाँ बैठने दूँ ?"

"अरे गोद में बिठा लो ना ।"

हाँ हाँ - हाँ --- हाँ

सबलोग हँस पड़े ।

'तुमलोग भी कैसे बच्चे हो?"

हुआ क्या ?"

"बताओ ना?"

"क्या बताऊँ? सब लड़कियाँ कच्ची हैं ।"

"कितना समय गया चूल्हा जलाने में ।"

"ऐसे नहीं होगा ।"

हॉ भाई ! कुछ तो करना पड़ेगा ।"

"मगर करोगे क्या?"

"ऐसी जगह पर करेंगे भी क्या?"

"किसने बोला था यहाँ आने के लिए?"

"अरे भाई! जंगल में ही तो मंगल होता है ।"

"मंगल का बच्चा चुप रह ।"

"इतना जंगल है, मुझे तो डर लग रहा है।"

"मुझे तो भूख लगी है।"

"अरे भूख की नानी । खाना पकेगा तब ना?"

"पहले तो चूल्हा जलने दो ।"

"सुनीता! ऊपर देखो तो, कौन आ रहा है ?"

"पता नहीं कौन है वह?"

"आदमी या जानवर?"

"डानकान पर्वत आ रहा है क्या?"

"नहीं कोई हनुमान होगा, पर्वत उठाकर लाया होगा।"

“भूत भी हो सकता है।"

"मुझे तो डर लग रहा है।"

“हम लड़कियों को डराने के लिए यहाँ ले आए हो क्या?"

“कोई जंगली आदमी है क्या?"

"टार्जन हो सकता है।"

“अरे मज़ाक मत कर। डराओ मत।"

“काल फिल्म का अजय देवगन तो नहीं?"

“अरे! यह तो स्नेहिल है। सर पर लकड़ी का बोझ है।"

"अरे नीता तुझे कैसे मालूम?"

"नीता को मालूम न होगा, तो किसको होगा?"

“हाँ - - - हाँ

-- हाँ - - - हाँ --- हाँ - - - 1"

सबलोग हँस पड़े।

'सबको मिला कि नहीं?"

"लगभग सबको मिल गया है।"

'जो ये बच गए हैं, क्या करोगे?"

"अरे मोटू! खाने की इच्छा है तो सीधे माँगने में क्या हर्ज है ?"

इतना बटर मत लो यार।"

"अरे खाने दो पेटूवा को।"

"अरे भूल ही गया।"

"क्या?"

पाइलट और हेंडीमेन को ब्रेकफास्ट देके आओ।"

"कुछ ब्रेड रख दो।"

"अंडे भी कुछ रख दो।"

"किसके लिए नीता?"

स्नेहिल

"नीता नहीं बतायेगी।"

"किसके लिए होगा? नहीं जानते हो ?"

"मैं तो जानती हूँ।"

"तो बताओ ना?"

"नहीं बताऊँगी? नीता मारेगी।*

"अरे पगली! कुछ लोग घूमने गए है। उनके लिए।"

वह तो है। पर नीता ! कुछ में तो एक ऐसा है, जिसके लिए तुम रखना चाहती हो।"

"अरे विनीता! बताओ ना ? वह कौन है ?"

"नहीं। नहीं बताऊँगी। नीता मुझे पीटेगी।"

"मैं बताऊँ? - काफी दूर खड़ी होकर कविता ने कहा।"

"बताओ! जल्दी बताओ।"

"स्ने - हि - - - ल।"

"हाँ - - - हाँ - हाँ - - - हाँ - - -।"

सबलोग हँस पड़े

"एक अच्छा गाना लगा दो ना?"

"क्या बुरा है? ठीक ही तो है।"

"अरे नींद आ जायेगी।"

"हाँ भाई! एक बढ़िया गाना लगा दो।"

"क्यों? नाचने का इरादा है ?"

"अरे बाद में नाचना।"

"पहले यह काम समाप्त करो।"

"अरे लाड़ली है। उँगली कट जायेगी।"

"तू ही काट के दिखा?"

"मैं लेकिन प्याज नहीं काटूंगी।"

"अरे तुम आलू काटो ना।"

"ऐ! तुम बैंगन काटो।"

"तुम गाजर काटो।"

"तुम क्यों लेक्चर दे रहे हो? कुछ तो करो।"

"हाँ हाँ! तुम मसाला पीसो।"

"अरे हल्दी कहाँ है?"

"चिल्लाते क्यों हो? वही काली वाली झोली में देखो।" "अरे देखो ! उसकी उँगली कट गयी।"

"कितना खून निकल रहा है।"

"स्नेहिल बहुत दर्द हो रहा है क्या?" "नीता! यह भी कोई पूछने की बात है ?"

"रुको! मैं दुपट्टा फाड़कर बाँध देती हूँ।" "हाँ नीता ! बढ़िया से मरहम पट्टी बाँध दो।"

"अभी तो दर्द उड़ गया होगा ना स्नेहिल?" "हाँ --- हाँ --- हाँ - - - हाँ - - -।" सबलोग हँस पड़े।

चलो ! चलो ! थोड़ा सैर करने जाते हैं।"

"कहाँ जाओगे?"

"आगे झरना है उसी में।"

"झरना है? तब तो मैं नहाऊँगा भी।"

"हाँ, मैं भी नहाऊँगा।"

"तैरना आता है?"

"नहीं।"

तो संभालके भाई।"

"अरे तुमलोग भी साथ में जाओगी ना।"

"अरे क्यों नहीं जाएँगे?"

"जाऊँगी। लेकिन डान्स करना पड़ेगा।"

"बढ़िया गाना भी लगाना पड़ेगा।"

"आज ब्लू है पानी पानी, दिन है सानी सानी

"हाँ हाँ! यही गाना लगाना होगा।"

"अरे सरलोग क्या सोचेंगे?"

"ये लोग इधर ही तो बैठे रहेंगे।"

"अगर देख लिया तो?"

"देख लिया तो लिया! कौन सी बड़ी बात है।"

"सर लोग भी जवानी में कम नहीं थे।"

स्नेहिल

"क्यों पंकज? उस दिन पार्क में सर को किसी के साथ नहीं देखा था ?"

"गुरु निंदा नहीं करनी चाहिए। क्या तुमने भूला दिया -

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरुदेवो महेश्वरः।

गुरु साक्षात परमब्रहम तस्मै श्रीगुरुवै नमः ।।"

"वाह! पंडित जी, वाह !"

"असीम ने ठीक ही कहा है। गुरु-महिमा अपार है।"

"तुम भी निकले पंडित के बाप!"

"लोग क्यों कहते है पता नहीं कि नारी-महिमा अपार है। दरअसल गुरु-महिमा अपार है। गुरु बगला भगत होता है। स्वभाव से बगला की तरह होता है। अनदेखा करता रहता है, मौका मिलने पर झट से पकड़ लेता है।"

"अरे बगला से भी बढ़कर है।"

'मुँह में राम बगल में पुरी भौंकनेवाला होता है। प्यार से बेटा-बेटी तो बोलता है, पर परीक्षा में कम अंक देता है। ढंग से तो सिखाता नहीं, पर परीक्षा खाता को काट-काटकर लाल बना देता है।"

"ये गुरु-पुराण चर्चा छोड़ दो।"

"तो क्या करूँ स्नेहिल?"

"कबीर का यह दोहा रटो, और नाचने, गाने, झूमने और तैरने के लिए तैयार हो

जाओ !

गुरु गोविंद दोनों खड़े, काकू लाग्यौ पाय।

बलिहारी इन गुरु की, जिन दियौ गोविंद बताय ।।

"हाँ.

- हाँ - हाँ --- हाँ --- ।"

सब हँस पड़े।

"अरे भाई! थोड़ा कमर हिला के तो नाचो।"

"जाओ तो! गाना चेंज कर दो।"

"थोड़ा वॉल्यूम भी बढ़ा देना।"

"तुम भी नाचो ना।"

"कैसे नाचते हो? हाथों में हाथ डालकर नाच।"

"शर्म की क्या बात है? मौका दोबारा नहीं आता।"

"हाँ हाँ खूब नाचो।"

"ऐ करीम! फोटो खींच।"

"मेरे हवाट्स ऐप पर फोटो भेज देना।"

"डिस्को डान्सर कहाँ गया? बुलाओ उसको।"

"फोटो ले यार। नहीं तो नाचने में मजा नहीं आता।"

"नीता। डिस्को डान्सर कौन है?"

"नीता नहीं बतायेगी।"

"तो तुम ही बताओ।"

"स्ने - - - हि----- ल।"

सब हँस पड़े।

“बोलो! और कुछ चाहिए ?"

"थोड़ी-सी सब्जी दो।"

"मुझे एक रोटी दो।"

"मुझे थोड़ा-सा चावल चाहिए।"

"मुझे मछली नहीं मिली।"

“और कुछ नहीं चाहिए। पेट मर गया।"

"मर गया या भर गया?"

“एक ही बात है, सिर्फ वर्ण का अंतर है।"

“थोड़ा पनीर दूँ?"

“मुझे क्यों दे रही हो? मोटू को दो ना ?"

“बार-बार मोटू कहना ठीक नहीं है। उठके चला जाऊंगा।"

“अरे बाबा खाओ ना! और कुछ नहीं बोलूँगी।"

“सविता! मोटू का ख्याल रखना। उसे बोलो कि और एक कराहा चावल है।"

"क्या मैं राक्षस हूँ?"

"राक्षस नहीं बोकासुर हो।"

'अरे भाई, खाते समय कुत्ते को भी चै चै नहीं कहा जाता

"मोटू को मत चिढ़ाओ। यह ठीक नहीं है का एक मुफ 'मोटू के पीछे क्यों सबलोग पड़े हो?"

"इधर तो देख, थाली खाली पड़ी है"। "बहुत मजा आ गया हैं।"

"उँगली क्यों चाट रहे हो?”

"सचमुच खाना अच्छा बना है।”

"बेचारे को खाने में कितनी दिक्कत हो रही है।" "होगी ही! उँगली जो कट गयी।"

“बुलाओ ना उसको। कम से कम खिला तो दे?”

“किसको? मैं कुछ समझी नहीं।”

“अरे पगली! मरहम पट्टी बांधनेवाली को बुलाओ।"

"हाँ - - -हाँ - - हाँ - - - हाँ

-

सबलोग हँस पड़े।

“अरे क्या हुआ! इतने शांत क्यों हो ?"

“अरे भाई नींद आ रही है।"

खाना बहुत खाया हूँ। झपकी आ रही है।" “कल दिनभर सो जाना।”

"कल क्लास नहीं करेंगे।"

"ठीक है, अब तो नाचो।”

"सब सीट से खड़े हो जाओ और नाचो।"

"काश! मैं भी उसकी तरह डांस कर सकता।"

"अरे मोटू! तू भी डांस करेगा ?"

“पहले पेट को कम करों, उसके बाद डांस सीखो।”

“एम ए के बाद ऐसा मौका कभी नहीं मिलेगा।”

"दोस्तो नाचो! खूब नाचो।"

“स्नेहिल! तुम बीच में नाचो।”

"वह तो मध्यमणि है ही।”

“मध्यमणि लड़कियों का, लड़कों का नहीं।"

“सच कहा तुमने।"

"सच नहीं कहा।”

"तो, सच क्या है?”

“सच तो यह है कि वह नीता का ही मध्यमणि है।"

"हाँ - - - हाँ - - - हाँ - - - हाँ - - -।"

सबलोग हँस पड़े।

क्रिंग ---क्रिंग

- क्रिंग -क्रिंग -- -- क्रिंग- -क्रिंग -

"कौन कम्बख्त है? इतनी सुबह भी कोई फोन कर सकता है ?"

क्रिंग• -क्रिंग-- क्रिंग

स्नेहिल

"अरे भाई उठ रहा हूँ। मशीन नहीं हूँ। धीरज तो रख। कितना सुंदर स्वप्न देख रहा था। कितने मजे से पिकनिक मना रहा था। एक से बढ़कर एक दृश्य था। वापसी में कौन क्या नहीं बोल रहा था? कितनी मधर विचित्र बातचीत हो रही थी। कैसे सहपाठीगण मुझे और नीता को लेकर मज़ाक कर रहे थे, सब इसी फोन ने बर्बाद कर डाला।" -क्रोधभरी नजर से स्नेहिल फोन को देखा। सोचने लगा कैसी है यह जिंदगी ! कैसा है यह संसार ! खाने को जिसको कण भी नहीं मिलता, रात को स्वप्न में राजा बनकर अगाध संपत्ति का मालिक बन बैठता है। जिसको चिथड़ा पहनना भी मुमकिन नहीं होता, वह रात को स्वप्न में रानी बन बैठती है। बुलबुल को जो छू भी नहीं सकता, वही शिवशंभू स्वप्न में रातभर बुलबुलों के बीच दौड़- धप करता रहता है, खेलकूद करता रहता है। क्लास में जिसको टेढ़ी नजर से भी कोई नहीं देखती है, वही स्नेहिल स्वप्न में कैसे लड़कियों का मध्यमणि बन जाता है ? गरीबों की कमियों की पूर्ति काश, स्वप्नों में पूरी न होकर वास्तव में पूरी हो जाती, तो कितना महान होता यह भारत !

क्रिंग---क्रिंग क्रिंग - क्रिंग

फोन को आलस्य एवं नफरत की भावना से देखा। इतने में घड़ी की घंटी बजी।

टन- टन - - -टन ---।

“अरे सात बज गया! - घड़ी की ओर देखते हुए स्नेहिल ने सोचा - अरे काफी देर हो चुकी है। पिकनिक जो जाना है। कब निकलू ? कब जाऊँ ? कहीं मुझे छोड़कर न जाए पिकनिक। हाय भगवान अब क्या करूँ ?

- क्रिंग - क्रिंग

झट से बिस्तर से उठकर फोन के पास गया स्नेहिल। नीरस शब्दों में कहा - “क्या बात है ?”

“सोरी! सोरी !” - स्नेहिल का चेहरा उतर गया। यह तो करीम का फोन था - "सोरी भाई ! मैं कोई दूसरा समझ रहा था। करीम बुरा न मानना। बोलो क्या बात है ?”

"क्या?

एक्सिडेंट ?

-

पिकनिक कैन्सेल ? नीता गिर गई ?-सीढ़ी से? अभी अस्पताल में ? नहीं नहीं ! यह कभी नहीं, कुछ नहीं होगा। मैं दोनों हाथ, दोनों पाँव चाहे, दे दूँगा, मगर उसे कुछ होने नहीं दूंगा।

करीम तुम बाइक लेकर आ जाओ। मैं तुम्हारे साथ जाऊगा

।

• स्नेहिल बोलता चला गया-

क्रिंग - - - क्रिंग -क्रिंग ---क्रिंग

"अरे भाई क्यों परेशान करते हो! मुझे देर हो रही है। मुझे पिकनिक जाना है।

न चाहते हुए भी बिना देखे ही टेलीफोन टेबिल पर रख दिया था। टेलीफोन झट से जमीन पर गिर पड़ा। टेलीफोन टूट गया। मुँह धोने को भी भूल गया। बिना टूथ ब्रश किए, बिना कंघी किए उलझे हुए बालों से वह झट से घर से निकल पड़ा। एक-एक पल एक-एक युग-सा लगा। हड़बड़ी में सामने के दरवाजे पर धक्का भी लगा। सिर पर काफी चोट भी लगी। पर न देखने के लिए समय

है, न सोचने के लिए, अपने आप बाया हाथ सिर पर गया। हाथ को सिर से हटाकर देखा कि उसमें थोड़ा-सा खन लगा हुआ है। सबकुछ नजरंदाज कर बाहर निकल पड़ा। उसे ध्यान ही नहीं रहा कि चप्पल उल्टा पहन रखा है। शर्ट के बटन का भी वही हाल है। तबतक करीम आ चुका था। स्नेहिल को लगा कि समय आज तीर-सा भाग रहा है। न जाने अस्पताल आज उठकर कहाँ चला गया ? पता नहीं घड़ी की काटे इतनी जल्दी कहाँ भागे जा रहे हैं ? क्यों आज दुनिया भर के लोग इतनी सुबह रास्ते में भीड़ करने के लिए निकाल पड़े हैं ? स्नेहिल की परेशानियाँ बढ़ने लगीं। कैसी है यह जिंदगी ! एक तरफ सुनहरा मधुर-मधुर स्वप्न, दूसरी तरफ कठोर वास्तविकता ! स्नेहिल की आँखों से आँसू निकल पड़े। पैर डगमगा गए ! आवाज काँपने लगी 'तुम्हें कुछ नहीं होगा। कुछ नहीं होगा। तुम मेरी ड्रीम गर्ल हो। ड्रीम गर्ल।" " अस्पताल पहुँचनेवाला ही था, अस्पताल का दरवाजा सामने ही था, अचानक स्नेहिल बेहोश हो गया। शायद चोट काफी लग चुकी थी। अंदरूनी चोट की कोई भरोसा नहीं होता। बाइक से गिरनेवाला ही था, करीम किसी तरह उसे संभालकर अंदर ले गया।दो दिन बाद जब होश आया, स्नेहिल ने देखा कि उसके सामने के बैड पर नीता सोई हुई है। दोनों हाथों पर प्लाष्टार लगा हुआ है। एम. ए. के सभी विद्यार्थी दोनों के सामने खड़े हैं। सभी गंभीर मुद्रा में हैं, जैसा कि हाल ही में बज्रपात हुआ हो। स्नेहिल को कुछ याद नहीं कि कैसे वह अस्पताल के बैड पर आ गया। गंभीर परिवेश को हल्का करने के उद्देश्य से करीम ने कहा - "जल्दी-जल्दी दोनों ठीक हो जाओ। पिकनिक मनाना होगा। बड़े धूमधाम से पिकनिक मनाना होगा।" पर उसने उसे यह नहीं बताया कि उसने उसे ब्लड भी दिया था।चाहते हुए भी स्नेहिल कुछ बोल नहीं पाया। इशारा किया। ओठ काँपने लगे। शायद वह कहना चाहता है - "ड्रीम् गर्ल तुम ठीक हो न ? ड्रीम् गर्ल तुम सही सलामत हो न ?"

****